सत्यमेव जयते

वचन-विबंध (प्रामिसरी इस्टापल)

भारत का

विधि आयोग

की

एक सौ आठवीं रिपोर्ट

भारत का विधि आयोग की एक सौ आठवीं रिपोर्ट का शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति	के स्थान पर	पढ़ें
1	1.1	9	करने से विरत	करने से प्रविरत
1	1.2	1	पूर्व संस्था	पूर्व संस्था
1	1.2	2	को य ज्ञान	को यह ज्ञान
1	1.2	3	कि संस्था	कि संस्था रोसा करे फिर भी...
2	1.2	4	उस वच पर	उस वचन पर
2	1.2	8	देना सम्पदा के	देना सम्या के
3	2.1(पार्श्व शीर्ष)	1	ऐतिहासिक पूर्वाविलोकन	ऐतिहासिक पुनर्विलोकन
3	2.2	15	प्रत्यर्थी	प्रत्यर्थी
3	2.2	29	देखते पर	देखने पर
4	2.3	8	समाप्त को	समाप्त हो
6	2.5	21	और से	जोर से
8	2.7	18	शिकागत नहीं	शिकायत नहीं
9	2.9	20	ऐसे शर्तों	ऐसी शर्तों
16	पाद-टिप्पण-2	1	तेरहवीं रिपोव	तेरहवीं रिपोर्ट
17	2.17 (i)	17	निबंध	विबंध
18	2.7(v)	5	नहीं पेश की	पेश नहीं की
18	2.17(v)	19	लागू की	लागू किए
20	2.17(vi)	12	अवसर	अक्सर
20	2.17(vi)	36	चाहिए वह	चाहिए कि वह
21	2.17(vi)	4	पसकार तत्पश्चात्	पसकार को तत्पश्चात्
21	पाद-टिप्पण- 1	2	आर० 4 ।	आर० 641 ।
23	2.18(4)	2	व्यक्ति ऐसा	व्यक्ति ऐसे
24	3.1	16	असंदिग्धत	असंदिग्ध
24	3.1	25	लार्ड्स	लार्ड्स
24	3.1	29	बात से	बात को
26	4.1	11	दिया है उसके अनूरूप कार्य करेंगे ।	दिया है ।
26	पाद-टिप्पण-1		वे० ए० टी०	के०एल०टी०
28	5.2	1	नहीं थी ।	नहीं की थी ।
30	स्पष्टीकरण-1		वहीं न्यायालय	वहां न्यायालय
30	यथोक्त-3		सभावना	संभावना

न्यायमूर्ति के० के० मैथ्यू

अर्द्ध० आ० सं० एफ 2(2), 84-एल० सी०

नई दिल्ली, 12 दिसम्बर, 1984

प्रिय मंत्री महोदय,

मैं इसके साथ विधि आयोग की एक सौ आठवीं रिपोर्ट भेज रहा हूं जो "वचन-विबंध (प्रामिसरी इस्टापल)" के सम्बन्ध में है । विधि आयोग ने स्वप्रेरणा से इस विषय पर विचार किया है ।

इस रिपोर्ट को तैयार करने में श्री वेपा० पी० सारथी, अंशकालिक सदस्य और श्री ए० के० श्रीनिवासमूर्ति, सदस्य-सचिव ने जो मूल्यवान सहयोग दिया है उसके लिए आयोग उनका ऋणी है ।

सादर,

भवदीय,

(ह०)

के० के० मैथ्यू

श्री जगन्नाथ कौशल,

विधि और न्याय मंत्री,

नई दिल्ली ।

विषय-सूची

	पृष्ठ
अध्याय 1—प्रस्तावना—प्रतिफल और वचन-विबंध	1
अध्याय 2—भारत में वचन-विबंध के सिद्धान्त का विकास	3
अध्याय 3—यूनाइटेड किंगडम और अमेरिका में विधि	24
अध्याय 4—समस्याएं	26
अध्याय 5—प्राप्त आलोचनाएं	28
अध्याय 6—सिफारिशें	29

2—28/M of LJ & CA/ND/84

अध्याय 1

प्रस्तावना प्रतिफल और वचन-विबंध

तफल ।

1.1 भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 (छ) के अधीन संविदा ऐसा करार है जो विधितः प्रवर्तनीय हो। धारा 2 (ङ) के अधीन प्रत्येक वचन (प्रामिस) करार है। किन्तु यदि करार का समर्थन "प्रतिफल" से नहीं किया जाता है तो धारा 25 में वर्णित केवल तीन दृष्टान्तों को छोड़कर ऐसा करार शून्य होगा। इसलिए, जब तक "वचन" का समर्थन "प्रतिफल" द्वारा नहीं किया जाता है तब तक वह वचन सामान्य रूप से विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होगा। धारा 2(घ) में "प्रतिफल" की निम्नलिखित परिभाषा दी गई है :—

"जब कि वचनदाता की वांछा पर वचनगृहीता या कोई अन्य व्यक्ति कुछ कर चुका है या करने से विरत रहा है, या करता है या करने से प्रविरत रहता है या करने का या करने से प्रविरत रहने का वचन देता है, तब ऐसा कार्य या प्रविरति या वचन उस वचन के लिए प्रतिफल कहलाता है।"

अतः जब कोई व्यक्ति वचन देता है और जब तक वचनगृहीता वचनदाता की वांछा पर कुछ नहीं करता है, या नहीं कर चुका है, या करने का वचन नहीं देता है तब तक ऐसा वचन प्रतिफल के बिना होगा और वह न्यायालय में प्रवर्तनीय नहीं किया जा सकता।

न विबंध ।

1.2 यह अनुमान कर लीजिए कि एक व्यक्ति ने किसी पूर्व संस्था (चैरिटेबल इंस्टीट्यूशन) को यह ज्ञान रखते हुए चन्दा देने का वचन देता है कि चन्दा देने वालों से प्राप्त धन से एक भवन का निर्माण किया जाएगा लेकिन वह यह वांछा नहीं करता है कि संस्था संस्थान वचन पर विश्वास करके भवन निर्मित करने का व्यय उपगत करती है। यदि वचनदाता अपने वचन को पूरा नहीं करता है तो संस्था वचनदत्त रकम प्राप्त करने के लिए उसके विरुद्ध वाद लाने में सफल नहीं हो सकती क्योंकि वचन का समर्थन प्रतिफल से नहीं किया गया है।

सरकार के एक ऐसे मामले का उदाहरण ले लीजिए जो कुछ राहत देने के सम्बन्ध में कोई घोषणा करती है, उदाहरण के लिए यदि किसी नागरिक द्वारा कुछ किया जाता है, जैसे कि यदि वह किसी विनिर्दिष्ट क्षेत्र में कोई नया कारखाना खोलता है तो उसे विक्रय-कर में छूट दी जाएगी। इस घोषणा पर विश्वास करके एक नागरिक आवश्यक कार्य कर सकता है और इस प्रकार अपनी स्थिति बदल सकता है। इसके पश्चात् सरकार अपनी नीति बदल देती है। यदि वह धारणा कर भी ली जाए कि नागरिक ने सरकार की वांछा पर कार्य किया था तब भी यह ऐसी संविदा नहीं हो सकती जो सरकार के विरुद्ध प्रवर्तनीय हो क्योंकि ऐसी संविदाएं, जो सरकार के विरुद्ध प्रवर्तनीय की जा सकती हैं, विशिष्ट प्ररूप में होनी चाहिए[1]।

इस प्रश्न के सम्बन्ध में कि पहले उदाहरण में संस्था को चन्दा देने का वचन देने वाले व्यक्ति से या दूसरे उदाहरण में सरकार को क्रमशः अपना वचन और व्यपदेशन (रिप्रजन्टेशन) पूरा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, अर्थात् क्या न्यायालय उनको अपना-अपना व्यपदेशन पूरा करने के लिए मजबूर कर सकता है, एक दृष्टिकोण यह है कि न्यायालय वचन-विबंध के सिद्धान्त के आधार पर ऐसा कर सकता है। भारत के उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ[2] ने इस सिद्धान्त को निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त किया है :—

---

1. भारत के संविधान का अनुच्छेद 299।
2. **एम० पी० शुगर मिल्स बनामस्टेट आफ यू०पी०**, ए० आई० आर० 1979 सुप्रीम कोर्ट 621 (न्यायमूर्ति भगवती और न्यायमूर्ति तुलजापुरकर)।

"जहां कि एक पक्षकार ने अपने शब्दों या आचरण से दूसरे पक्षकार को ऐसा स्पष्ट और असन्दिग्ध वचन दिया है जिसका आशय भविष्य में विधिक सम्बन्ध सृजित करना या विधिक सम्बन्ध प्रभावी करना है और यह जानते के आशय से ऐसा वचन दिया है कि दूसरा पक्षकार, जिसको ऐसा वचन दिया गया है उस वचन पर कार्य करेगा और दूसरे पक्षकार ने उस वचन पर विश्वास करके वास्तव में कार्य किया है वहां ऐसा वचन, वचन देने वाले पक्षकार पर आबद्धकर होगा और वह ऐसे वचन को भंग करने के लिए उस दशा में हकदार नहीं होगा जबकि दोनों पक्षकारों के बीच जो व्यवहार हुए हैं उनको ध्यान में रखते हुए उसे भंग करने की इजाजत देना सम्पदा के विपरीत होगा और ऐसा इस बात के होते हुए भी होगा कि उन पक्षकारों के बीच पहले से कोई सम्बन्ध विद्यमान रहा हो या न रहा हो[1]"।

सिद्धान्त के परीक्षण की आवश्यकता।

1.3 इस तथ्य के अतिरिक्त कि उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की एक दूसरी न्यायपीठ[2] ने उपर्युक्त विनिश्चय से, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सभी मामलों में इस सिद्धान्त को सरकार के विरुद्ध लागू किया जा सकता है, अभिव्यक्त रूप से विसम्मति प्रकट की है, पहले मामले में ऐसे विचार प्रकट किए गए हैं जो उच्चतम न्यायालय के इससे पूर्व बृहतर न्यायपीठों द्वारा अभिव्यक्त विचारों के विरुद्ध हैं और यूनाइटेड किंगडम तथा अमेरीका की विधि के भी विरुद्ध है। इन देशों से ही इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने की प्रेरणा मिली है।

इस प्रकार यह विधि अनिश्चित स्थिति में है इसलिए विधि आयोग ने इसके विस्तार और परिधि को ठीक-ठीक परिनिश्चित करने के लिए इस सिद्धान्त का स्वप्रेरणा से अध्ययन किया है।

---

1. एम० पी० शुगर मिल्स बनाम स्टेट आफ यू० पी०, ए० आई० आर० 1979 सुप्रीम कोर्ट 621, पृष्ठ 631।
2. मैसर्स जीत राम शिव कुमार बनाम स्टेट आफ हरियाणा, ए० आई० आर० 1980, सुप्रीम कोर्ट (न्यायमूर्ति मुर्तजा अली और न्यायमूर्ति लासन)।

अध्याय 2

भारत में बचन-विबंध के सिद्धान्त का विकास

ऐतिहासिक पूर्वावलोकन की आवश्यकता।

2.1 बचन-विबन्ध के सिद्धान्त के ठीक-ठीक विस्तार को समझने के लिए हमारे देश में इसके विकास का पता लगाना आवश्यक है । ऐसे अध्ययन से उस न्यायिक प्रक्रिया को समझने में सहायता मिलेगी जिसके द्वारा इस सिद्धान्त को बढ़ाया या घटाया गया है।

गैंजिज (गंगा) मैनुफैक्चरिंग कम्पनी बनाम सूरज मल।

2.2 इस मामले में,[1] "ग" ने अपीलार्थी से टाट के बोरे क्रय करने की संविदा की थी और 1,07,500 बोरे परिदत्त नहीं किए गए क्योंकि "ग" उनकी कीमत का संदाय (भुगतान) करने में असमर्थ था । जब "ग" ने यह व्यपदेशन (रिप्रजन्टेशन) किया कि 87,500 बोरों के लिए संदाय करने की व्यवस्था की गई है तब "ग" को यह आदेश दिया गया कि संदाय किए जाने पर उसे इन बोरों का परिदान कर दिया जाए। "ग" के प्रतिनिधि ने "ग" से अपीलार्थी के नाम एक पत्र लिया जिसमें अपीलार्थी से यह अनुरोध किया गया था कि वह प्रत्यर्थी के प्रतिनिधि को, जो "ग" का व्यपदेशन लेकर गया था, बोरों का परिदान करने का निदेश दे दे। अपीलार्थी के भारसाधक अधिकारी ने ऐसा परिदान कर दिया । इसका कारण यह था कि प्रत्यर्थी ने "ग" को आवश्यक अग्रिम धन देने का करार किया था। अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के प्रतिनिधि को पचास हजार बोरों का परिदान कर दिया लेकिन शेष बोरों का परिदान करने से इंकार कर दिया क्योंकि "ग" उनकी कीमत का संदाय करने में असफल रहा । तब प्रत्यर्थी ने शेष बोरों का परिदान किए जाने के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध यह अभिकथन करते हुए वाद चलाया कि उन्होंने (प्रत्यर्थियों) "ग" को अपीलार्थी के इस व्यपदेशन पर अग्रिम धन दिया था कि माल का परिदान कर दिया जाएगा । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद की डिक्री कर दी कि क्योंकि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के पक्ष में परिदान करने की अनुमति दे दी थी इसलिए अपीलार्थी यह इंकार करने से विबन्धित था कि अपीलार्थी ने परिदान के आदेश में वर्णित माल उस व्यक्ति को, जिसे परिदान किए जाने का आदेश दिया गया था, अर्थात् प्रत्यर्थी के प्रतिनिधि को, व्ययनित किए जाने से रोक रखा। न्यायालय ने इस दलील के उत्तर में कि इस मामले में साक्ष्य अधिनियम की धारा 115 के कारण विबन्ध का प्रश्न ही नहीं उठता है, निम्नलिखित विचार प्रकट किया था[2] :—

"अंग्रेजी की विधि-शब्दावली में "विबन्ध" शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया जाता है वह विभिन्न प्रकार का होता है और वह केवल उन्हीं विषयों के लिए सीमित नहीं होता है जिनकी चर्चा साक्ष्य अधिनियम के अध्याय 8 में की गई है । किसी व्यक्ति को कोई विशिष्ट साक्ष्य देने से ही विबन्धित नहीं किया जा सकता बल्कि ऐसे कार्यों को करने से या किन्हीं ऐसे विशिष्ट तर्कों या दलीलों का अवलम्बन करने से भी विबन्धित किया जा सकता है जिनका प्रयोग अपने विरोधी पक्षकार के विरुद्ध करने में उसकी सामर्थ्य और सद्विवेक के नियम रोकते हैं।"

विबन्ध से सम्बन्धित विधि का कथन जिस रूप में ऊपर किया गया है वहां उच्चतम न्यायालय के निम्नलिखित विचार को देखते पर अत्यधिक व्यापक प्रतीत होता है[3]:—

'हमें यह सन्देह है कि क्या न्यायालय यह अवधारित करते समय कि किसी विशिष्ट व्यक्ति के आचरण से विबन्ध होता है या नहीं, साक्ष्य अधिनियम की धारा 115 के उपबन्धों

---

1. (1880) आई० एल० आर० 5, कलकत्ता 669।
2. (1880) आई० एल० आर० 5, कलकत्ता 669, पृष्ठ 678 पर।
3. महान्तप्पा बनाम चान्दरम्मा, ए० आई० आर० 1965, सुप्रीम कोर्ट 1812।

के बाहर की बातों पर भी विचार कर सकता है और क्या वह इस बात का भी अवलम्बन कर सकता है जिसे कभी-कभी "साम्यापूर्ण विबन्ध" कहते हैं ?'

किन्तु यह अनुमान कर लेने पर भी कि कलकत्ता उच्च न्यायालय ने जिस रूप में विधि का कथन किया है वह सही है, इस बात को ध्यान में रखना है कि यह मामला प्राइवेट पक्षकारों के बीच था।

अहमद यार खां बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट।

2.3 इस मामले[1] के तथ्य इस प्रकार हैं—अपीलार्थी का पूर्ववर्ती व्यक्ति राजस्व देने वाली कुछ भूमि के लिए सरकार का पट्टेदार था उसने नहर का निर्माण किया था जो सरकारी भूमि में से होकर जाती थी और इसके लिए उसने आठ लाख रुपए से अधिक खर्च किया था। सरकार ने इसका निर्माण करने की अनुमति दे दी थी क्योंकि इससे भूमि का बहुत बड़ा क्षेत्र खेती करने योग्य हो जाता और सरकारी राजस्व में वृद्धि हो जाती। यह नहर प्राइवेट पक्षकारों की भूमि में से होकर भी जाती थी और वे भी प्रतिकर सम्बन्धी कुछ निबन्धनों पर इसका निर्माण किए जाने के लिए राजी हो गए थे। चालू बन्दोबस्त की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् सरकार ने अपीलार्थी के पूर्वाधिकारी को उसकी भक्ति और अच्छी सेवा की मान्यता प्रदान करने के लिए इनाम के रूप में भूमि का एक बड़ा भाग दे दिया। इस अनुदान के निबन्धनों में से एक निबन्धन यह था कि सरकार बेहतर प्रशासन के लिए नहर का प्रबन्ध ग्रहण कर सकती है। किन्तु सरकार ने स्थायी रूप से प्रबन्ध-ग्रहण करने का आदेश पारित कर दिया और अपीलार्थी को नहर की भूमि के सांपत्तिक अधिकार से वंचित कर दिया, प्रिवी कौंसिल ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया[2] :—

"सभी परिस्थितियों पर विचार करने के बाद और प्रस्तावित निर्माण कार्य के स्थायी स्वरूप को तथा निर्माण पर अनिश्चित रकम खर्च होने की सम्भावना को और इस तथ्य को ध्यान में रखने के बाद कि सरकार ने नहर निर्माताओं को उतनी आवश्यक भूमि अर्जित करने के लिए प्रोत्साहित किया जितनी ऐसी भूमि में से नहर जाती थी जो प्राइवेट स्वामित्व में थी और उस समय की सरकार के इस दृष्टिकोण को भी, जो सरकारी अभिलेखों से प्रकट होता है, ध्यान में रखने के बाद कि नहर का निर्माण और उसका अनुरक्षण खां लोग सरकार की अपेक्षा अधिक मितव्ययितापूर्वक कर सकेंगे और देशी प्रधानों (नेटिव चीफ) के हाथों में उस प्रदेश का बन्दोबस्त छोड़ देना बेहतर होगा यह बात सुस्पष्ट रूप से प्रतीत होती है कि सरकार का यह आशय अवश्य रहा होगा कि खां लोग यह समझ लें और वे वास्तव में ऐसी आशा भी करते होंगे कि नहर के लिए अपेक्षित सभी सरकारी भूमि उनको सांपत्तिक अधिकार सहित दे दी जाएगी। यदि सरकार का आशय यह था कि उस समय चालू बन्दोबस्त की अवधि का पर्यवसान हो जाने पर नहर के लिए अपेक्षित और इस्तेमाल की जाने वाली सरकारी भूमि सरकार को वापस मिल जाएगी तो यह कल्पना करना कठिन है कि सरकार ने ऐसा कथन करने का लोप कर दिया होगा..... या प्राइवेट स्वामियों से नहर निर्माताओं द्वारा अर्जित भूमि सरकार को अन्तरित किया जाना सुनिश्चित करने के लिए उपबन्ध करने का लोप कर दिया होगा।"

प्रिवी कौंसिल ने यह निष्कर्ष निकालने में **रैम्सटेन बनाम डाइसन**[3] में अधिकथित नियम का अवलम्बन किया जो निम्नलिखित रूप में है :—

"यदि कोई व्यक्ति किसी भूमि में कुछ हित के लिए भू-स्वामी के साथ किए गए करार के अधीन या इसी के बराबर ऐसी आशा में, जो भू-स्वामी द्वारा उत्पन्न या प्रोत्साहित की गई है, कि उस व्यक्ति का उस भूमि में कुछ हित प्राप्त हो जाएगा, वह व्यक्ति भू-स्वामी की सहमति से और ऐसे वचन या आशा पर विश्वास करके उस भूमि का कब्जा, भू-स्वामी

---

1. (1901) 28 आई० ए० 211।
2. वही, पृष्ठ 218।
3. (1866) एल० आर० 1, एच० एल०, 129, 170।

की जानकारी में और उसके द्वारा कोई आपत्ति किए बिना, ले लेता है और उस भूमि पर धन खर्च करता है तो साम्या का न्यायालय भू-स्वामी को ऐसे वचन या आशय को पूरा करने के लिए मजबूर करेगा।"

प्रिवी कौंसिल ने[1] यह भी अभिनिर्धारित किया कि ऐसे बन्दोबस्त की, जिसके लिए बारबरनी भूमि का पट्टा दिया गया था, अवधि समाप्त होने पर सरकार ने अपीलार्थी के पूर्वाधिकारी को मामूली निर्धारण लगान पर भूमि का भाग पूर्ण स्वामित्व के अधिकार सहित अनुदान कर दिया था और बन्दोबस्त के विलेख में सरकार ने यह अनुबन्ध किया था कि उनको नहर के प्रबन्ध में आवश्यकतानुसार अधिकार प्राप्त था। किन्तु इससे सरकार को नहर का अधिग्रहण (सीज) और अभिहरण (कन्फिस्केट) करने का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता।

इस मामले के तथ्यों के आधार पर अपीलार्थी सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 के अधीन नहर की भूमि का शाश्वत पट्टा सरकार से पाने के लिए हकदार होगा। किन्तु इस संव्यवहार के समय उक्त अधिनियम सम्भवतः लागू नहीं था इसी कारण से लार्ड मेकनाटन ने अपीलार्थी को राहत देने के लिए **रेम्सडन** के मामले वाला नियम लागू किया। किन्तु यह नियम साम्पत्तिक विबन्ध का नियम है और वचन-विबन्ध का नियम नहीं है। इंग्लिश विधि में साम्पत्तिक विबन्ध की सदैव एक विशेष हैसियत होती है।

म्युनिसिपल कारपोरेशन आफ बम्बई-बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट।

2.4 इस मामले में[2] अपीलार्थी ने अपनी ही भूमि इस प्रतिफल के लिए सरकार के पक्ष में अभ्यर्पित कर दी कि सरकार उसके पक्ष में सरकारी भूमि का पट्टा मामूली भाटक (लगान) पर दे देगी। भूमि का कब्जा ले लेने के पश्चात् अपीलार्थी ने निर्माण करने में अत्यधिक धनराशि खर्च कर दी। सत्ताइस वर्षों के पश्चात् प्रत्यर्थी ने भाटक की बकाया की बहुत बड़ी रकम का दावा करने के लिए और यदि कोई पट्टा हुआ हो तो उसे समाप्त करने की घोषणा के लिए वाद फाइल किया। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा की गई डिक्री का प्रत्यर्थी के पक्ष में परिवर्तित कर दिया। उच्च न्यायालय ने पक्षकारों को अपने-अपने अधिकार पुनः परिनिश्चित करने की अनुज्ञा दे दी अर्थात् क्या अपीलार्थी को पट्टाधृति का अधिकार और प्रत्यर्थी को उचित भाटक के लिए अधिकार था? मुख्य न्यायमूर्ति सर लारेंस जैनकिन्स ने निर्णय में **रेम्सडन** वाले मामले के नियम का उल्लेख किया और यह विचार प्रकट किया कि "इस साम्या (इक्विटी) के क्षेत्र के अन्तर्गत आउन आता है"।

किन्तु इस निर्णय का परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने इस नियम को लागू करके अपीलार्थी को कोई राहत नहीं दी।

विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने इस बात पर ध्यान दिया कि पक्षकार नगरपालिका (म्युनिसिपैलिटी) और सरकार हैं और ये दोनों लोक कल्याण में हितबद्ध हैं तथा इन दोनों के बीच इस विवाद को बढ़ने देना नहीं चाहिए और वास्तव में यह वाद अपीलार्थी की बेदखली के लिए नहीं था बल्कि केवल भाटक के लिए और पक्षकारों के अधिकारों को अभिनिश्चित करने के लिए था। उच्च न्यायालय की डिक्री वास्तव में इस बात के लिए थी कि नगरपालिका को करार किए गए भाटक पर भूमि धारण करनी चाहिए और यदि नगरपालिका सहयोग नहीं करती है तो प्रत्यर्थी के पक्ष में बेदखली के लिए डिक्री हो जाएगी।

कितनी भी अधिक कल्पना करने के आधार पर इस निर्णय के बारे में यह नहीं समझा जा सकता कि यह साम्पत्तिक विबन्ध के नियम को लागू करता है और वचन-विबन्ध के नियम को इस निर्णय द्वारा लागू की जाने की बात तो सोची ही नहीं जा सकती।

कलक्टर आफ बम्बई बनाम बम्बई कारपोरेशन।

2.5 जिन तथ्यों के आधार पर यह मामला[3] उठा है वे इस प्रकार हैं :—
1865 में बम्बई की सरकार में नगरपालिका निगम (म्युनिसिपल कारपोरेशन आफ बम्बई) के

---

1. (1901) 28 आई० ए० 211, पृष्ठ 219, 220।
2. (1905) आई० एल० आर० 29, बम्बई 580।
3. ए० आई० आर० 1951, सुप्रीम कोर्ट 469।

हक-पूर्वाधिकारी से किसी विशेष स्थल से पुराने बाजार हटाने और उस स्थल को खाली करने की मांग की थी और नगरपालिका आयुक्त (म्युनिसिपल कमीशनर) के आवेदन पर सरकार ने एक संकल्प पारित किया जिसमें नगरपालिका को एक दूसरा स्थल का अनुदान किए जाने का अनुमोदन किया गया और उसे प्राधिकृत किया गया । म्युनिसिपल कारपोरेशन ने उस स्थल को छोड़ दिया जहां पर पुराने बाजार थे और नए स्थल पर बाजार लगाने और उन्हें बनाए रखने पर 17 लाख रुपए की धनराशि खर्च की । 1940 में बम्बई के कलक्टर ने नए स्थल के भू-राजस्व का निर्धारण किया और तब म्युनिसिपल कारपोरेशन ने इस घोषणा के लिए वाद फाइल किया कि वह किसी निर्धारण का संदाय किए बिना उस भूमि को सदा के लिए धारण करने का हकदार है । उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि मामले की परिस्थितियों में सरकार भू-राजस्व का निर्धारण करने के लिए हकदार नहीं थी क्योंकि म्युनिसिपल कारपोरेशन ने सरकारी संकल्प के निबन्धनों के अनुसार भूमि का कब्जा लिया था और खुले तौर पर उसका ऐसा कब्जा बिना बाधा के कायम रहा है और उसे यह अधिकार सत्तर वर्षों से प्राप्त है तथा उसने इससे वह सीमित हक अर्जित कर लिया है जो वह इस अवधि के दौरान विहित करता रहा है अर्थात् मुफ्त भाटक पर भूमि को शाश्वत के लिए धारण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है । केवल न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर अय्यर ने बहुमत के निर्णय से सहमति प्रकट करते हुए वचन-विबन्ध के सिद्धान्त के आधार पर यह विनिश्चय किया कि सरकार को अपने व्यपदेशन का वचन-भंग करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । ऐसा लगता है कि उन्होंने पूर्वतर मामले में रैम्सडन वाले नियम के उल्लेख को गलत समझ लिया । यह स्पष्ट है कि उन्होंने यह सोचा कि यदि पूर्वतर मामले में रेम्सडन वाले नियम को लागू किया गया था तो पश्चात्वर्ती मामले में इस नियम को अधिक ओर से लागू किया जा सकता है । ऐसा करने में उन्होंने इसे गलती से "वचन-विबन्ध" कह दिया ।

यूनियन आफ इंडिया बनाम एंग्लो-अफगान एजेंसीज ।

2.6 इस मामले में[1] भारत सरकार ने ऊनी माल के निर्यातकर्ताओं को प्रोत्साहन देने के लिए निर्यात प्रोत्साहन स्कीम (एक्सपोर्ट प्रोमोशन स्कीम) प्रख्यापित किया । प्रत्यर्थी ने कुछ मूल्य के माल का निर्यात किया और निर्यात किए गए माल के पूरे मूल्य के बराबर मूल्य के माल का आयात करने के हक का दावा किया जैसा कि उक्त स्कीम में अधिसूचित किया गया था लेकिन वस्त्र आयुक्त (टेक्सटाइल कमीशनर) ने आयात करने के हक को घटा दिया । उच्चतम न्यायालय ने प्रत्यर्थी के पक्ष में इस आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि वस्त्र आयुक्त और भारत-संघ (यूनियन आफ इंडिया) ने स्कीम के खण्ड 10 के अधीन शक्ति के प्रयोग में कार्य नहीं किया था जिसके अधीन वस्त्र आयुक्त निर्यात किए गए माल के मूल्य का निर्धारण कर सकता है और ऐसे निर्धारित मूल्य के आधार पर हक का प्रमाणपत्र जारी कर सकता है किन्तु इसके विपरीत वस्त्र आयुक्त ने प्रत्यर्थी को अपना मामला प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना आयात करने के हक को घटा दिया । न्यायालय ने यह विचार भी व्यक्त किया कि :—

> "हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि प्रत्यर्थी का दावा ऐसी साम्या (इक्विटी) पर समुचित रूप से आधारित है जो निर्यात प्रोत्साहन स्कीम में भारत-संघ की ओर से किए गए व्यपदेशन के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी के पक्ष में उत्पन्न होती है और प्रत्यर्थी ने इस व्यपदेशन के आधार पर जो कार्य इस विश्वास से किया है कि सरकार द्वारा जो व्यपदेशन किया गया है वह उसे पूरा करेगी, उस कार्य के परिणामस्वरूप भी उक्त साम्या उत्पन्न होती है ।"

जब न्यायालय ने इस आधार पर कि अपीलार्थियों ने स्कीम के उपबन्धों का पालन नहीं किया है प्रत्यर्थी के पक्ष में अभिनिर्धारित कर दिया तब सरकार पर वचन-विबन्ध को लागू किए जाने का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी और न्यायालय ने जो विचार प्रकट किया है उसे अवश्य ही सर्वथा इतरोक्ति मानना चाहिए ।

---

1. ए० आई० आर० 1968, सुप्रीम कोर्ट 718।

सेन्चुरी स्पिनिंग मैनुफैक्चरिंग कंपनी बनाम उल्हास नगर म्युनिसिपलटी।

2.7 इस मामले 1 के तथ्य इस प्रकार हैं—1956 में अपीलार्थी ने एक औद्योगिक क्षेत्र में अपना कारखाना लगाया। उस समय उस औद्योगिक क्षेत्र में आयात किए गए माल पर कोई चुंगी देय नहीं थी। 1960 में सरकार ने एक म्युनिसिपलटी (नगरपालिका) का गठन किया जिसके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत वह औद्योगिक क्षेत्र भी था। 1962 में सरकार उस क्षेत्र को नगरपालिका के क्षेत्र से अलग करने पर राजी हो गई लेकिन जिला नगरपालिका ने इस पर आपत्ति की किन्तु वह विद्यमान कारखानों को सात वर्ष तक के लिए चुंगी का संदाय करने से छूट देने के लिए राजी हो गई। 1965 में जिला नगरपालिका उल्हास नगर म्युनिसिपलटी (उल्हास नगर नगरपालिका) बन गई जिसने 1968 में चुंगी-शुल्क उद्गृहीत करने का विनिश्चय किया और अपीलार्थी ने इस पर आपत्ति की। उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी के पक्ष में अभिनिर्धारित करते हुए निम्नलिखित विचार व्यक्त किया:—

"विद्यमान तथ्य से सम्बन्धित व्यपदेशन और भविष्य में किए जाने वाले किसी कार्य से सम्बन्धित व्यपदेशन के बीच निः सन्देह रूप में स्पष्ट भिन्नता है। यदि पूर्ववर्ती व्यपदेशन किसी ऐसे तथ्य के सम्बन्ध में व्यपदेशन के तुल्य है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह व्यपदेशन किए जाने के समय वास्तव में विद्यमान था तो उस दशा में वचन-विबन्ध का प्रश्न उठता है जबकि ऐसे व्यपदेशन का अवलम्बन लेने वाला कोई दूसरा व्यक्ति अपनी स्थिति बदल देता है (अर्थात् अपना वचन भंग करता है)। भविष्य में किए जाने वाले किसी कार्य से सम्बन्धित व्यपदेशन के परिणाम से संविदा तब हो सकती है जब कि कोई दूसरा व्यक्ति, जिससे वह व्यपदेशन किया गया है, उस व्यपदेशन के आधार पर कार्य करता है। भविष्य में किए जाने वाले किसी कार्य से सम्बन्धित व्यपदेशन के आधार पर कार्य करता है। भविष्य में किए जाने वाले किसी कार्य से सम्बन्धित व्यपदेशन जिस समय किया जाता है उस समय वह सच्चा व्यपदेशन नहीं है। किन्तु असत्य तथ्य से सम्बन्धित व्यपदेशन और भविष्य में किए जाने वाले किसी कार्य से सम्बन्धित ऐसे व्यपदेशन के बीच, जो अभिव्यक्त या विवक्षित रूप में हो, कोई स्पष्ट विरोध नहीं है। भविष्य में किए जाने वाले किसी कार्य के सम्बन्ध में किए गए व्यपदेशन में यह आशय विद्यमान हो सकता है कि जिस रूप में व्यपदेशन किया गया है उस रूप में कार्य किया जाएगा। यदि कोई दूसरा व्यक्ति ऐसे व्यपदेशन के आधार पर कार्य करता है तो जब तक कि ऐसा व्यपदेशन करने वाले व्यक्ति को लागू होने वाले कानून में अन्यथा उपबन्धित नहीं है, ऐसे व्यपदेशन का परिणाम एक ऐसा करार हो सकता है जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय हो किन्तु यदि कानून द्वारा यह अपेक्षित है कि करार किसी विशेष प्ररूप में किया जाएगा तो ऐसे व्यपदेशन के परिणामस्वरूप और उस पर कार्य किए जाने से कोई करार नहीं हो सकता किन्तु विधि समुचित मामलों में उसके विरुद्ध साम्या के सिद्धान्त को लागू करने और उसे अपने द्वारा किए गए व्यपदेशम से उत्पन्न होने वाली बाध्यता का पालन करने के लिए मजबूर करने में अशक्त नहीं है।

लोक निकाय (पब्लिक बाडीज) तथ्यों के सम्बन्ध में अपने द्वारा किए गए उस व्यपदेशन और अपने द्वारा दिए गए उस वचन को, जिसका अवलम्बन लेकर दूसरे व्यक्ति अपनी स्थिति को अपने प्रतिकूल हित में बदल चुके हैं, पूरा करने के लिए उसी तरह से आबद्ध हैं जिस तरह से कि प्राइवेट व्यष्टि (इन्डीविज्युअल्स) आबद्ध हैं। किसी ऐसे व्यष्टि के विरुद्ध उसके ऐसे व्यपदेशन से, जो वचन तुल्य है, उत्पन्न होने वाली बाध्यता को वह व्यक्ति, जो उस वचन के आधार पर कार्य करता है, संविदा से उत्पन्न होने वाली बाध्यता के रूप में लागू कर सकता है। जब विधि द्वारा यह अपेक्षित हो कि लोक निकाय के विरुद्ध विधितः प्रवर्तनीय संविदा किसी विशेष प्ररूप में होगी या उसका निष्पादन कानून द्वारा विहित रीति से किया जाएगा तब यदि वह संविदा उस प्ररूप में नहीं है तो बाध्यता को समुचित मामलों में साम्या के आधार पर उसके विरुद्ध लागू किया जा सकता है।" न्यायालय ने निम्नलिखित विचार भी व्यक्त किया :—

"यदि हमारे नवजात लोकतंत्र को उन्नति करनी है तो लोगों और लोक-निकायों के आचरण के लिए भिन्न-भिन्न मानदण्ड होने की साधारणतया अनुमति नहीं दी जा सकती।

1. ए० आई० आर० 1971, सुप्रीम कोर्ट 1021।

हमारे निर्णय में लोक निकायों को उस दायित्व का पालन करने से छूट प्राप्त नहीं है जो उसके द्वारा किए गए किसी ऐसे व्यपदेशन से उत्पन्न हुआ हो जिसका अवलम्बन लेकर किसी नागरिक ने अपनी स्थिति को अपने हित के प्रतिकूल बदल लिया है।"

इस मामले के बारे में तीन बातों को ध्यान में रखना है। पहली बात यह है कि इस मामले में वचन-विबंध के सिद्धान्त का लागू किया जाना स्पष्ट रूप से गलत है। इस सिद्धान्त का उल्लेख करने वाले सभी विद्वान न्यायाधीश, जिनमें न्यायमूर्ति भगवती और तुलजापुरकर भी हैं, इस बात से सहमत हैं कि विधायी शक्ति के विरुद्ध वचन-विबंध नहीं हो सकता। करारोपण चाहे विधानमण्डल या उसके प्रत्यायुक्त (डेलीगेट) द्वारा किया जाए, विधायी शक्ति का प्रयोग है और चुंगी कर के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरी बात यह है कि न्याय-मूर्ति शाह द्वारा "नवजात लोकतंत्र" का उल्लेख किया जाना दुर्भाग्यपूर्ण बात है। विकासशील देश में लोकतंत्र निष्प्रभावी नहीं हो सकता और सरकार या कोई नगरपालिका, जो सरकार के विस्तार का ही एक अंग है, तभी प्रभावी हो सकती है जब कि वे अपनी नीतियां बनाने और उनको फिर से बनाने के लिए तथा अपने राजस्व की वृद्धि करने के लिए स्वतंत्र हो। तीसरी बात यह है कि अपीलार्थी के पक्ष में कोई मामला है ही नहीं। जब औद्योगिक क्षेत्र को नगर-पालिका के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है तब उस क्षेत्र में आयात किए गए माल के संबंध में चुंगी स्वतः देय हो गई। नगरपालिका तो केवल रियायत करने के लिए छूट देने पर राजी हो गई थी। यदि बाद में यह रियायत वापस ले ली गई थी तो इसके बारे में कोई शिकायत नहीं की जा सकती। यह बात भी नहीं थी कि अपीलार्थी को यह वचन देकर कि उसके साथ अनुकूल व्यवहार किया जाएगा उसे उस क्षेत्र में आमंत्रित किया गया हो।

नरिन्दर चन्द बनाम यूनियन टेरिटरी, हिमाचल प्रदेश।

2.8 इस मामले में[1] अपीलार्थी ने शराब का कारबार करने के लिए किए गए नीलाम में सबसे ऊंची बोली लगाई थी। उसने यह अभिकथन किया कि नीलाम किए जाने के समय उपायुक्त (डिप्टी कमिश्नर) ने यह घोषणा की थी कि शराब के विक्रय पर कोई विक्रय-कर देय नहीं होगा लेकिन इस घोषणा (आश्वासन) के बावजूद सरकार ने विक्रय-कर उद्गृहीत किया है और ऐसे विक्रय-पर विक्रय-कर उद्गृहीत करने के लिए कदम उठा रही है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :—

"कर अधिरोपित करने की शक्ति निःसन्देह विधायी शक्ति है। विधानमण्डल इस शक्ति का प्रयोग प्रत्यक्षतः कर सकता है या कुछ शर्तों के अधीन रहते हुए विधानमण्डल यह शक्ति किसी अन्य प्राधिकारी को प्रत्यायोजित कर सकता है। किन्तु इस शक्ति का प्रयोग चाहे विधानमंडल द्वारा या उसके प्रत्यायुक्त (डेलीगेट) द्वारा किया जाए, विधायी शक्ति का प्रयोग है ..... । जब तक छूट देने के लिए कार्यपालक (एक्जीक्यूटिव) को विधि द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से सशक्त नहीं कर दिया जाता है तब तक कार्यपालक यह नहीं कह सकता कि वह किसी विशिष्ट व्यक्ति के विरुद्ध इस विधि को लागू नहीं करेगा। कोई भी न्यायालय सरकार को विधि का कोई उपबन्ध लागू करने से रोकने के लिए निदेश नहीं दे सकता।"

न्यायालय ने बम्बई कारपोरेशन के मामले का उल्लेख करते हुए आनुषंगिक रूप से यह विचार व्यक्त किया कि यह भूस्वामी और अभिधारी (टेनेन्ट) के बीच सम्बन्ध का मामला था।

टर्नर मारिसन एण्ड कम्पनी बनाम हुगर फोर्ड इन्वेस्टमेंट ट्रस्ट लिमिटेड।

2.9 इस मामले में[2] प्रत्यर्थी अपीलार्थी की कम्पनी का शत प्रतिशत (100 प्रतिशत) शेयर धारक था। अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के आय-कर सम्बन्धी दायित्व का उन्मोचन (डिस्चार्ज) करने की जिम्मेदारी ली थी और प्रत्यर्थी के शेयरों के लिए देय लाभांश का उपयोग कामकाज पूंजी (वर्किंग कैपिटल) में करने के लिए रोक रखा था। अपीलार्थी इस बात की जानकारी प्रत्यर्थी को देता रहा कि उसने आदेश दिए गए प्रतिदाय (रिफन्ड्स) को लेने और संगृहीत करने के लिए क्या-क्या कार्रवाइयां की हैं और उनको अपने पास रोक रखा है लेकिन उसने किसी समय भी

1. ए० आई० आर० 1971, सुप्रीम कोर्ट 2399।
2. ए० आइ० आर० 1972, सुप्रीम कोर्ट 1311।

प्रत्यर्थी से यह मांग नहीं की कि प्रत्यर्थी संदत्त कर (टैक्स) की प्रतिपूर्ति कर दे। जब प्रत्यर्थी ने अपने शेयरों का अन्तरण कर दिया तब अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध इस बात के लिए वाद चलाया कि अपीलार्थी ने कर के दायित्व की जितनी रकम का उन्मोचन कर दिया है उतनी रकम प्रत्यर्थी दे और प्रत्यर्थी के शेयरों के धारणाधिकार (लियन) के लिए भी दावा किया। प्रत्यर्थी ने अपनी प्रतिरक्षा (बचाव) के लिए दी गई दलीलों में से एक दलील यह पेश की कि अपीलार्थी विबंधित था अर्थात् अपीलार्थी पर विबंध का सिद्धान्त लागू होता है। न्यायालय ने वचन-विबंध की दलील को उचित ठहराते हुए निम्नलिखित विचार व्यक्त किया :—

"विबंध साम्या का एक नियम है। पिछले कुछ वर्षों में साम्या के इस नियम के नए आयाम हो गए हैं। यह एक प्रकार का विबंध हो गया है, अर्थात् वचन-विबंध को इस देश में और इंगलैंड में भी मान्यता प्राप्त हो गई है। "वचन-विबंध" का क्या पूरा अभिप्राय है इसका स्पष्ट रूप से कथन अभी तक नहीं हुआ है——— हाई ट्रीज के मामले में[1] इस सिद्धान्त का कथन इस प्रकार किया गया है — जब एक पक्षकार अपने शब्दों या आचरण से दूसरे पक्षकार को कोई ऐसा वचन या आश्वासन देता है जिसका आशय उन दोनों के बीच विधिक सम्बन्ध स्थापित करने और तदनुसार कार्य किए जाने के लिए होता है तब यदि दूसरे पक्षकार ने उस वचन पर विश्वास किया है और उसके अनुसार कार्य किया है तो जिस पक्षकार ने आश्वासन या वचन दिया था उसको तत्पश्चात् ऐसा पूर्ववर्ती सम्बन्ध अपनाने की इजाजत नहीं दी जा सकती मानो उसने ऐसा कोई वचन या आश्वासन दिया ही नहीं था बल्कि उसे उन दोनों के बीच विधिक सम्बन्ध को अवश्य स्वीकार करना चाहिए लेकिन वह ऐसा विधिक सम्बन्ध उन शर्तों के अधीन रह कर स्वीकार कर सकता है जिन शर्तों को उसने स्वयं रखवाया है, भले ही, ऐसे शर्तों का समर्थन विधि की किसी दृष्टि से नहीं होता हो बल्कि केवल उसके वचन से होता है। किन्तु इस सिद्धान्त से कोई ऐसा वाद-हेतुक उत्पन्न नहीं होता जो पहले से विद्यमान नहीं था। इसलिए जब कोई ऐसा वचन दिया जाता है जिसका समर्थन प्रतिफल द्वारा नहीं होता है तब वचनगृहीता ऐसे वचन के आधार पर कोई वाद नहीं चला सकता..... इन विनिश्चयों में अधिकथित नियम निःसन्देह न्याय के हित की वृद्धि करता है और इस कारण से हमें इसे स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है।"

यह ध्यान देने की बात है कि यह मामला भी प्राइवेट पक्षकारों के बीच था।

2.10 इस मामले में[2] कमिश्नर, एच० आर० एण्ड सी० ई० ने अर्जीदार को देवासम भूमि का पट्टा देना मंजूर किया था और यह पट्टा 99 वर्षों के लिए निष्पादित किया गया था। अर्जीदार को भूमि के एक भाग के सम्बन्ध में इस बात के लिए परिमिट (अनुज्ञापत्र) दिया गया था कि वह पेड़ों को काटकर उस भूमि को साफ कर दे। किन्तु सरकार ने पट्टे की मंजूरी को एच० आर० एण्ड सी० ई० ऐक्ट की धारा 99 के अधीन रद्द कर दिया। अर्जीदार द्वारा पेश की गई दलीलों में से एक दलील यह थी कि पेड़ों को काटकर भूमि साफ करने का परिमिट देकर सरकार द्वारा यह व्यपदेशन किया गया था कि मंजूरी विधिमान्य थी और अर्जीदार ने इस व्यपदेशन के आधार पर कार्य किया और उस सम्पत्ति का विकास करने के लिए बहुत धन लगाया जिससे उसका नुकसान भी हुआ। किन्तु उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया :—

ए० पिल्लई बनाम स्टेट।

"सरकार धारा 99 के अधीन अपनी कानूनी शक्ति का प्रयोग करने से विबंधित नहीं थी। ऐसा व्यपदेशन नहीं किया गया था कि पट्टे के लिए मंजूरी विधिमान्य थी—पेड़ काटकर भूमि साफ करने के लिए एम० पी० पी० एफ० ऐक्ट के अधीन परिमिट के दिए जाने से किसी भी तरह यह विवक्षित नहीं था कि देवासम द्वारा दिया गया परिमिट विधिमान्य है। दूसरा कारण यह है कि अर्जीदार ने व्यपदेशन पर विश्वास करके अपना नुकसान करके कार्य नहीं

1. 1947, (1) के बी 130।
2. ए० आई० आर० 1972 केरल 39।

किया और तीसरा कारण यह है कि सरकार को धारा 99 के अधीन जो शक्ति प्रदान की गई है उसका प्रयोग लोक-कल्याण के लिए किया जाना है या चाहे जो कुछ भी हो इस शक्ति का प्रयोग सरकार से भिन्न व्यक्तियों के फायदे के लिए किया जाना है।"

उच्च न्यायालय ने **एंग्लो-अफगान** और **उल्हासनगर** के मामलों का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित विचार प्रकट किया :—

"ये मामले इस मामले के तथ्यों के लिए लागू नहीं होते हैं क्योंकि इन मामलों में इस बात पर विचार या विनिश्चय नहीं किया गया था कि ऐसी वैवेकिक (डिसक्रिशनरी) कानूनी शक्ति पर, जिसका प्रयोग लोक कल्याण के लिए या इस शक्ति का प्रयोग करने वाले व्यक्ति या निकाय से भिन्न व्यक्ति के फायदे के लिए किया जाना है, व्यपदेशन के प्रभाव का क्या परिणाम होगा ——————। ऐसी वैवेकिक कानूनी शक्ति के प्रयोग के बारे में विबंध लागू नहीं हो सकता जिस शक्ति का प्रयोग लोक-कल्याण के लिए या जिस व्यक्ति पर विबंध लागू की जाने की दृढ़ता से मांग की जाती है उससे भिन्न किसी अन्य व्यक्ति के फायदे के लिए किया जाना है।"

स्टेट आफ केरल बनाम ग्वालियर रेयन्स ।

2.11 इस मामले में[1] वन भूमि के बहुत बड़े भाग के स्वामियों या पट्टेदारों ने केरल प्राइवेट फारेस्ट (वेस्टिंग एण्ड एसाइनमेंट) ऐक्ट, 1971 की विधिमान्यता को चुनौती दी थी। इस मामले में पेश की गई दलीलों में से एक दलील यह थी कि प्रत्यर्थी कम्पनी ने अपने को केरल में इसलिए स्थापित किया है जिसमें कि वह सरकार द्वारा प्रदाय की जाने वाली कच्ची सामग्री से रेयन कपड़े की लुगदी का उत्पादन करे किन्तु सरकार ऐसी कच्ची सामग्री का प्रदाय करने में असमर्थ थी और सरकार ने एक करार द्वारा यह वचन दिया था कि यदि कम्पनी ने कच्ची सामग्री के प्रदाय के लिए वन-भूमि को खरीद लिया तो सरकार साठ वर्षों की अवधि तक प्राइवेट वन (फारेस्ट्स) के अर्जन के लिए विधान नहीं बनाएगी और प्रत्यर्थी ने भूमि का बहुत बड़ा भाग खरीद लिया है इसलिए विधान न बनाए जाने का करार सरकार के विरुद्ध साम्यापूर्ण विबंध के रूप में लागू होना चाहिए। न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया :—

"हमें यह दर्शित नहीं होता है कि सरकार का करार कैसे उसे इस विषय पर विधान बनाने से रोक सकता है? उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही बताया है कि जनता के लिए प्रयोग की जाने वाली विधायी शक्ति का सरकार द्वारा अभ्यर्पण कर देने से कम्पनी लाभ नहीं उठा सकती या ऐसा अभ्यर्पण सरकार के विरुद्ध साम्यापूर्ण विबंध के रूप में लागू नहीं हो सकता।"

एसिस्टेन्ट कस्टोडियन बनाम बी० के० अग्रवाल ।

2.12 प्रत्यर्थी द्वारा कोई सम्पत्ति खरीदने से पहले उसको एसिस्टेन्ट कस्टोडियन (सहायक अभिरक्षक) ने यह जानकारी दे दी थी कि वह सम्पत्ति निष्क्रान्त सम्पत्ति नहीं थी किन्तु बाद में उस सम्पत्ति को निष्क्रान्त सम्पत्ति घोषित कर दिया गया। न्यायालय ने विबंध की दलील को नामंजूर करते हुए निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया[2]:—

"हमारी राय यह है कि हाउस आफ लार्ड्स ने[3] जो दृष्टिकोण अपनाया है वह सही है और लार्ड डेनिंग ने[4] जो दृष्टिकोण अपनाया है वह सही नहीं है।"

"लार्ड डेनिंग ने निम्नलिखित दृष्टिकोण अपनाया था—

"क्राउन यह कह कर अपना बचाव नहीं कर सकता कि विबंध क्राउन को आबद्ध नहीं करते क्योंकि इस सिद्धांत को बहुत समय पहले से ही अस्वीकार कर दिया गया है——— इसलिए अब मैं सबसे कठिन प्रश्न पर विचार करता हूं। क्या मिनिस्टर आफ पेंशन्स (पेंशन मंत्री) युद्ध कार्यालय के पक्ष से आबद्ध हैं? मैं सोचता हूं कि वह आबद्ध है।"

---

1. ए० आई० आर० 1973 सुप्रीम कोर्ट, 2734 ।
2. ए० आई० आर० 1974 सुप्रीम कोर्ट 2325।
3. **होवेल बनाम फालमाउन्थ बोट कन्सट्रक्शन कम्पनी**, (1951) ए० सी० 837 ।
4. **राबर्ट्सन बनाम् मिनिस्टर आफ पेन्शन्स** (1949), 1 के० बी० 227 ।

हाउस आफ लार्डस के विचार निम्नलिखित रूप में प्रकट किए गए हैं :—

"**लार्ड साइमान्डस्**—माई लार्डस्, मैं जानता हूं कि हमारी विधि में ऐसा कोई सिद्धान्त ही नहीं है और इसके लिए कोई नजीर भी पेश नहीं की गई है। किसी कार्य की अवैधता में इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता और वह अवैध ही रहता है चाहे उस कार्य को करने वाला व्यक्ति इस उपधारणा से भ्रम में हो कि शासनतंत्र की श्रेणियों में से कितने भी ऊंचे या छोटे सरकारी अधिकारी को वचन देने का प्राधिकार प्राप्त था। मैं इस बात में संदेह नहीं करता कि दाण्डिक कार्यवाही में यह तात्विक तथ्य होगा कि कार्य करने वाले व्यक्ति को उस दशा में भ्रम हो गया होगा जब कि ऐसी कोई जानकारी होना अपराध का आवश्यक तत्व था और चाहे जो कुछ भी हो इतनी बात तो है कि इसका प्रभाव अधिरोपित किए जाने वाले दण्डादेश पर पड़ेगा। किन्तु यहां यह प्रश्न नहीं है। यहां प्रश्न यह है कि क्या कानूनी प्रतिषेध के होने पर भी किए गए किसी कार्य के स्वरूप पर इस तथ्य का प्रभाव पड़ता है या नहीं कि वह कार्य करने की प्रेरणा प्राधिकारी के सम्बन्ध में भ्रमपूर्ण उपधारणा करने के कारण हुई थी। मेरी राय में इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से "नहीं" में है। ऐसे उत्तर से किसी ऐसे नागरिक को, जो अपना बचाव इस बारिक तरीके से करना चाहता है, अपने काम में सफल होना अधिक कठिन हो जाएगा किन्तु क्या केवल इस कारण से इस प्रश्न का उत्तर भिन्न रूप में दिया जाना न्यायसंगत होगा?"

लार्ड नार्मंड—मैं इस कथन के बारे में यह समझता हूं कि लार्ड जस्टिस की राय में प्रत्यर्थी ऐसा कथन करने के हकदार थे कि क्राउन उस व्यपदेशन के कारण वंजित था जो मिस्टर थाम्पसन ने किया था और जिसके आधार पर प्रत्यर्थियों ने कार्य किया था और क्राउन प्रत्यर्थियों के विरुद्ध यह अभिकथन नहीं कर सकता था कि उन्होंने कानूनी आदेश भंग किया है तथा प्रत्यर्थी भी अपीलार्थी से यह कथन करने के लिए समान रूप से हकदार थे कि कोई भंग नहीं हुआ था। किन्तु यह तो निश्चित है कि न तो कोई मंत्री (मिनिस्टर) और न क्राउन का कोई अधीनस्थ अधिकारी किसी कार्य या व्यपदेशन द्वारा क्राउन को कानूनी प्रतिषेध लागू करने से वंजित कर सकता है या किसी पक्षकार को यह कहने के लिए हकदार बना सकता है कि कानूनी प्रतिषेध भंग नहीं किया गया था।

जा० रामनाथ बनाम स्टेट आफ केरल।

2.13 अपीलार्थी सतर्कता आयुक्त नियुक्त किया था और यह एक अस्थायी पद था। पक्षकारों के बीच एक करार हुआ था कि अपीलार्थी की पदावधि 3 अक्तूबर, 1968 से पांच वर्षों के लिए या जब तक वह 60 वर्ष का नहीं हो जाता, इनमें से जो भी पहले हो जाए, तब तक के लिए होगी। इस पद को फरवरी, 1970 में समाप्त कर दिया गया। अपीलार्थी द्वारा पेश की गई दलीलों में से एक दलील यह थी कि प्रत्यर्थी करार के निबन्धनों को वचन-विबंध के कारण बदल नहीं सकता था और उसे ऐसा करने से रोका जाए। न्यायालय ने[1] इस दलील को नामंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी यह जानता था कि वह पद अस्थायी था और न्यायालय उस दशा में विबंध के सिद्धान्त का लागू किया जाना अपवर्जित कर देते हैं (अर्थात् लागू नहीं करते) जब यह पता चलता है कि जिस प्राधिकरण के विरुद्ध विबंध की दलील पेश की गई है उसका जनता के प्रति यह कर्तव्य था कि वह वैसा कार्य करे क्योंकि जनता के विरुद्ध विबंध को लागू करना उचित नहीं होता और न्यायालय ने निम्नलिखित उद्धरण का अवलम्बन किया[2]—

"एक साधारण नियम के रूप में विबंध के सिद्धांत को राज्य के विरुद्ध उसके सरकारी, लोक (पब्लिक) या प्रभुतासम्पन्न हैसियत के सम्बन्ध में लागू नहीं किया जाएगा। किन्तु इसका एक अपवाद तब होता है जब कपट या प्रकट अन्याय को रोकने के लिए यह सिद्धान्त लागू करना आवश्यक है।"

---

1. ए०आई० आर० 1973, सुप्रीम कोर्ट, 2641, पृष्ठ 2649 पर।
2. अमेरिकन ज्यूरिस्प्रूडेन्स, सेकेन्ड, पृ० 783, पैरा 123।

मलहोत्रा एण्ड सन्स बनाम यूनियन आफ इंडिया।

2.14 1975 के भारत संघ (यूनियन आफ इंडिया) ने एक स्कीम बनाई जो अखरोट के रजिस्ट्रीकृत निर्यातकर्ताओं को इस दृष्टि से प्रोत्साहन देने के लिए थी कि निर्यातकर्ताओं की जो अन्यथा हानि होती है उसकी पूर्ति कर दी जाए और देश की विदेशी मुद्रा की आय में वृद्धि की जाए। ऐसे निर्यातकर्ताओं को इस स्कीम के अधीन नकद सहायता 30 सितम्बर, 1975 तक दी जानी थी। यह नकद सहायता स्कीम 30 सितम्बर, 1975 को वापस ले ली गई और स्कीम समाप्त करने का कार्य सम्बद्ध सभी व्यक्तियों को सूचना देने तथा उनके व्यपदेशनों पर विचार करने के पश्चात् किया गया। अर्जीदारों ने यह अभिकथन करते हुए कि उन्होंने अपने कारबार का विस्तार करने के लिए बहुत धनराशि लगाई है यह दलील पेश की कि सरकार अपना व्यपदेशन भंग करने से विबंधित है। उच्च न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि[1]:—

"यह भलीभांति ज्ञात है कि राज्य जैसे प्रभुतासम्पन्न प्राधिकरण को लाखों लोगों के हित का ध्यान रखना पड़ता है और देश की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में राज्य को इस आश्वासन से भविष्य में ऐसे सभी समय के लिए आबद्ध नहीं किया जा सकता जब जनता के हित और केवल एक बार दिए गए आश्वासन के बीच संघर्ष हो....ऐसे मामलों में (जब राज्य सरकारी, लोक या प्रभुतासम्पन्न सम्बन्धी कृत्यों का पालन करता है) विबंध का सिद्धान्त उस समय लागू नहीं होगा जब इस सिद्धान्त और साधारण जनता के हित के बीच संघर्ष हो, सिवाय उस समय के जब कि कपट या प्रकट अन्याय को रोकने के लिए यह सिद्धान्त लागू करना आवश्यक है....। यदि सरकार अपनी नीति के विनिश्चय का पुनर्विलोकन करने के पश्चात् यह महसूस करती है कि साधारण जनता के हित की दृष्टि से पूर्वतर नीति में संशोधन या परिवर्तन करना आवश्यक है तो सरकार को उस नीति का पुनर्विलोकन करने से वर्जित नहीं किया जा सकता....हमारा देश ऐसा नहीं है कि उसे असीमित वित्तीय साधन उपलब्ध हों और न्यायालय इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। इसलिए सरकार द्वारा थोड़े से वित्तीय साधनों के उपयोग किए जाने को सरकार के निर्णय पर छोड़ देना होगा क्योंकि सरकार ही लोगों की आवश्यकताओं के बारे में निर्णय करने के लिए सर्वोत्तम न्यायाधीश है। न्यायालय केवल प्रकट अन्याय या कपट रोकने के लिए सरकार को उसके वचनों से आबद्ध करेगा और सरकार की भविष्य में सभी समय के लिए अपनी नीति का उस दशा में गुलाम नहीं बना रहने देगा जब कि सरकार अपनी सरकारी या लोक या प्रभुता सम्पन्न हैसियत में कार्य करती है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वाणिज्यिक कार्यकलापों में स्थिति भिन्न होगी। देश की वर्तमान व्यवस्था में जब साधारण जनता के हित के लिए विभिन्न परियोजनाओं को शुरू और पूरा करने के लिए धन की आवश्यकता है तब सरकार को ऐसे व्यपदेशन से जो उसने पहले किया था, उस दशा में बाध्य नहीं किया जा सकता जब कि उस व्यपदेशन के कायम रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब देश में एक तरफ लाखों भूखे लोगों के फायदे के लिए राज्य द्वारा धन की आवश्यकता है और दूसरी तरफ थोड़े से ऐसे धनी लोग हैं जो अपने अतिरिक्त लाभ के लिए सरकार को उसके वचन से बाध्य करना चाहते हैं तब ऐसी हालत में सरकार को प्राथमिकताओं को अवधारित करने के लिए पूरी स्वतंत्रता अवश्य देनी चाहिए। अर्जीदारों को कोई हानि उठाने का खतरा नहीं है सिवाय इसके कि उन्हें अतिरिक्त लाभ की हानि निःसन्देह होगी।

एक्साइज कमिश्नर बनाम राम कुमार।

2.15 1969 में उत्तर प्रदेश ने देशी शराब के विक्रय के लाइसेन्स दिए जाने के लिए नीलाम किए गए। नीलाम किए जाने के समय ऐसी कोई घोषणा नहीं की गई कि उत्तर प्रदेश सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1948 की धारा 4 के अधीन 1959 में जारी की गई अधिसूचना के अधीन देशी शराब के विक्रय से सम्बन्धित विक्रय-कर की जो छूट मंजूर की गई थी वह वापस ले ली जाएगी या वापस नहीं ली जाएगी। इस सम्बन्ध में की गई अपीलों में से एक अपील में प्रत्यर्थी नीलाम में सबसे ऊंची बोली लगाने वालों में से एक व्यक्ति है। जब 1959 वाली अधिसूचना वापस ले ली गई और जिसके परिणामस्वरूप उसके द्वारा किए

1. ए० आई० आर० 1976 जम्मू-कश्मीर, 41, पृष्ठ 45 से लेकर 48 तक।

गए विक्रय पर विक्रय-कर लगाया गया तब उसने यह दलील पेश की कि 1959 वाली अधिसूचना विबंध के रूप में लागू होती है। न्यायालय ने उसकी इस दलील को नामंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि[1]:—

"अब अनेक विनिश्चयों द्वारा यह भली भांति तय हो चुका है कि सरकार की विधायी, या प्रभुतासम्पन्न या कार्यपालिक शक्तियों के प्रयोग में किए गए कार्यों के सम्बन्ध में सरकार के विरुद्ध विबंध लागू किए जाने का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

न्यायालय ने निम्नलिखित उद्धरण का भी अवलम्बन किया[2]:—

"अब यह आग्रह करने का समय चला गया कि जब सरकार प्राइवेट उद्यमी द्वारा पहले से चलाए जा रहे किसी कारबार को अपने हाथ में ले लेती है या प्राइवेट उद्यम के मुकाबले में वही उद्यम करने लगती है तब सरकार पर दायित्व का भार डालने के प्रयोजन के लिए सरकार को ऐसे बाद में एक प्राइवेट पक्षकार माना जाए। सरकार चाहे जिस रूप में भी कार्य करती है उस रूप में उस सरकार से ठहराव करने वाला कोई भी व्यक्ति ठीकठीक यह अभिनिश्चित करने का जोखिम उठाता है कि सरकार की ओर से कार्य करने का तात्पर्य रखने वाला व्यक्ति अपने प्राधिकार को सीमा के अंतर्गत कर रहा है या नहीं .....और यह बात उस दशा में भी लागू होती है, जैसा कि इस मामले में है, जब सरकार की ओर से कार्य करने वाला अभिकर्ता (एजेन्ट) अपने प्राधिकार पर लागू होने वाले प्रतिबन्धों के बारे में स्वयं न जानता हो। यह नियम कि "किसी व्यक्ति को सरकार के साथ व्यवहार करने में चारों ओर से समझबूझ कर काम करना चाहिए" कोई कठोर दृष्टिकोण परिलक्षित नहीं करता है। यह सभी न्यायालयों के इस कर्तव्य को केवल अभिव्यक्त करता है कि न्यायालयों को उन शर्तों का पालन करना चाहिए जो कांग्रेस द्वारा पब्लिक ट्रेजरी को प्रभारित करने के लिए परिलक्षित की गई है।"

बिहार ई० जी० एफ० को आपरेटिव सोसाइटी बनाम सिपाही सिंह।

2.16 जलकार में मछली उद्योग के अधिकारों के लिए अपीलार्थी से 1974-75 वर्ष के लिए बन्दोबस्त किया गया। अपीलार्थी ने जमा का संदाय (भुगतान) करने में व्यतिक्रम किया इसलिए प्रत्यर्थी से बन्दोबस्त किया गया लेकिन उसके द्वारा कब्जा लिए जाने के पहले ही राज्य ने अपना इरादा अपीलार्थी के पक्ष में बदल दिया। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी की रिट अर्जी मंजूर कर ली। उच्चतम न्यायालय ने इसकी अपील मंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया[3] कि "यह भली भांति तय किया जा चुका है कि सरकार द्वारा उसके प्रभुतासम्पन्न, विधायी और कार्यपालिक कृत्यों के प्रयोग में सरकार के विरुद्ध कोई विबंध लागू नहीं होता।"

एम०पी०शुगर मिल्स बनाम स्टेट आफ यू०पी०।

2.17 10 अक्तूबर, 1968 को प्रत्यर्थी ने एक समाचार प्रकाशित किया कि राज्य में सभी नई औद्योगिक यूनिटों (इकाइयों) को अपना उत्पादन प्रारम्भ करने की तारीख से तीन वर्ष की अवधि के लिए यू० पी० सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1948 (उत्तर प्रदेश विक्रय-कर अधिनियम, 1948) के अधीन विक्रय-कर से छूट दी जाएगी। 11 अक्तूबर को अपीलार्थी ने उद्योग निदेशक (डाइरेक्टर आफ इन्डस्ट्रीज) को यह कथन करते हुए एक पत्र लिखा कि विक्रय-कर की छूट देने की जो घोषणा की गई है उसे दृष्टि में रखते हुए वह एक उद्जन-शोधन संयंत्र (हाइड्रोजिनेशन प्लान्ट) स्थापित करेगा और उसने ऐसे विक्रय कर की छूट के पुष्टिकरण की मांग की। 14 अक्तूबर को निदेशक (डाइरेक्टर) ने उक्त समाचार की पुष्टि करते हुए उत्तर भेजा। 12 दिसम्बर को अपीलार्थी के प्रतिनिधि ने सरकार के मुख्य सचिव तथा राज्यपाल के सलाहकार से भेंट की और उसे संयंत्र (प्लान्ट) स्थापित करने के लिए किए जा रहे विभिन्न कार्यों की जानकारी दी और मुख्य सचिव ने उसको यह आश्वासन दिया कि अपीलार्थी विक्रय-कर से छूट पाने का हकदार होगा। (यह राज्य

1. ए० आई० आर० 1976, सुप्रीम-कोर्ट, 2237, पृष्ठ 224 पर।
2. **फेडरल कारपोरेशन इन्श्योरेन्स कारपोरेशन बनाम मेरील** (1947) 332 यू० एस० 380।
3. ए० आई० आर० 1977 सुप्रीम-कोर्ट 2149, पृष्ठ 2154 पर।

26 फरवरी, 1968 से लेकर 28 फरवरी, 1969 तक राष्ट्रपति के शासन के अधीन थी और नई निर्वाचित सरकार ने 27 फरवरी, 1969 को कार्यभार संभाला)। 13 दिसम्बर को अपीलार्थी ने मुख्य सचिव को एक पत्र लिखा जिसमें उसने मुख्य सचिव द्वारा दिए गए मौखिक आश्वासन को अभिलिखित करते हुए उसकी पुष्टि करने के लिए अनुरोध किया। 22 दिसम्बर को मुख्य सचिव ने यह उत्तर दिया कि औपचारिक रूप से आवेदन दिए जाने पर प्रत्यर्थी छूट देने के अनुरोध पर विचार करेगा। उस समय तक अपीलार्थी वास्तव में ऐसा आवेदन दे चुका था। ऐसी वित्तीय संस्थाएं, जिनसे अपीलार्थी ने वित्तीय सहायता के लिए मांग की थी, 22 दिसम्बर के पत्र से संतुष्ट नहीं थीं क्योंकि इस पत्र में केवल यह कथन किया गया था कि प्रत्यर्थी छूट देने के अनुरोध पर विचार करेगा इसलिए अपीलार्थी ने मुख्य सचिव को छूट देने के औपचारिक आदेश के लिए फिर लिखा। 23 जनवरी को मुख्य सचिव ने छूट के सम्बन्ध में आवश्यक आश्वासन दिया। तब अपीलार्थी ने कारखाना लगाने के काम को आगे बढ़ाया और 25 अप्रैल को मुख्य सचिव को यह जानकारी देते हुए लिखा कि मुख्य सचिव द्वारा दिए गए आश्वासन को दृष्टि में रखकर उत्तर प्रदेश वित्त निगम (यू०पी० फाइनेन्स कारपोरेशन) ने वित्तीय सहायता मंजूर की है। 16 मई को सरकार के उद्योग विभाग के उपसचिव ने अपीलार्थी से यह अनुरोध करते हुए उसको लिखा कि वह अपने प्रतिनिधि को मुख्य सचिव द्वारा निश्चित की गई एक बैठक में छूट के प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिए भेजे। अपीलार्थी ने यह उत्तर दिया कि छूट तो पहले ही मंजूर कर दी गई है फिर भी वह अपने प्रतिनिधि को बैठक में भेजेगा। अपीलार्थी का प्रतिनिधि बैठक में उपस्थित रहा और उसने यह बात दुहराई कि अपीलार्थी को छूट पहले ही मंजूर कर दी गई है। इसके पश्चात् अपीलार्थी ने कारखाना लगाने के काम को आगे बढ़ाया। 20 जनवरी, 1970 को प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को यह जानकारी दी कि प्रत्यर्थी ने नीति सम्बन्धी यह विनिश्चय किया है कि वनस्पति के जो नए यूनिट 30 सितम्बर तक उत्पादन शुरू कर देंगे उनको विक्रय-कर से छूट दी जाएगी। 25 जून, 1970 को अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को यह लिखा कि वह रियायती दरों का लाभ उठाएगा। 2 जुलाई को अपीलार्थी के कारखाने में उत्पादन शुरू हुआ। 12 अगस्त को एक दूसरा समाचार प्रकाशित हुआ कि प्रत्यर्थी ने आंशिक रियायत को भी रद्द करने का विनिश्चय किया है। अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को यह निदेश दिए जाने के लिए रिट अर्जी फाइल की कि प्रत्यर्थी, अपीलार्थी द्वारा बनाई गई वनस्पति के विक्रय पर कर की छूट तीन वर्षों की अवधि तक के लिए दे।

उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया[1] कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी को वनस्पति के उत्पादन की तारीख से तीन वर्षों की अवधि तक के लिए वनस्पति के विक्रय के सम्बन्ध में विक्रय-कर के संदाय से छूट देने के लिए बाध्य है और प्रत्यर्थी, अपीलार्थी से ऐसा कर वसूल करने के लिए तब तक हकदार नहीं है जब तक कि वह अपीलार्थी द्वारा पहले से संगृहीत और जमा किया गया कर वापस करने के सम्बन्ध में कुछ निदेशों का पालन नहीं कर देता।

न्यायालय ने ऐसा विनिश्चय करने में वचन-विबंध के सिद्धान्त के विस्तार के सम्बन्ध में भारतीय, इंग्लिश और अमरीकी विधियों का पुनर्विलोकन करके वचन-विबंध के सिद्धान्त का अवलम्बन किया। ऐसा विनिश्चय करने में न्यायालय ने निम्नलिखित प्रतिपादनाओं का अभिकथन किया:—

(क) यह सच है कि वचन-विबंध को वाद-हेतुक का आधार बनाने की इजाजत देने से वचन-विबंध का सिद्धांत, जिसके अनुसार संविदात्मक बाध्यता लागू किए जाने के लिए प्रतिफल का होना अपेक्षित है, बहुत ही कमजोर हो जाएगा। फिर भी इस बात के लिए कोई कारण नहीं है कि इस नए सिद्धान्त को, जो

1. ए० आई० आर० 1979 सुप्रीम-कोर्ट 621।

साम्या से उत्पन्न हुआ है, ईमानदारी और सद्भावना बढ़ाने तथा विधि को न्याय के अधिक अनुकूल बनाने के लिए क्यों लागू किए जाने से रोक रखा जाए और क्यों नहीं इसे पूर्ण सक्रिय और व्यापक रूप से लागू किए जाने की इजाजत दी जाए जिससे कि यह उस प्रयोजन की पूर्ति कर सके जिसके लिए इसकी कल्पना की गई थी और इसकी उत्पत्ति हुई थी.....हमें ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता कि वचन-विबंध को वाद-हेतुक का आधार ऐसी स्थिति में क्यों नहीं बनाने की इजाजत दी जाए जब साम्या (इक्विटी) की पूर्ति करने के लिए ऐसा करना अर्थात् वचन-विबन्ध को वाद-हेतुक बनाने की इजाजत देना आवश्यक है।

(ख) इसलिए अब इस विधि को निश्चित कर दिया गया समझ लेना चाहिए कि जब सरकार कोई वचन यह जानते हुए या यह आशय रखते हुए देती है कि उस वचन के अनुसार कार्य किया जाएगा और वचनगृहीता उस वचन पर विश्वास करके कार्य करते हुए अपनी स्थिति बदल देता है तब सरकार अपने वचन से आबद्ध होगी और ऐसा वचन वचनगृहीता की प्रेरणा पर सरकार के विरुद्ध इस बात के होते हुए भी प्रवर्तनीय होगा कि ऐसे वचन के लिए कोई प्रतिफल नहीं है और वचन ऐसी औपचारिक संविदा के प्ररूप में अभिलिखित नहीं है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 299 के अधीन अपेक्षित है। यह तो प्राथमिक बात है कि विधिसम्मत शासित गणतंत्र में कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी महान या छोटा हो, विधि के बाहर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति हर तरह से और पूरी तरह विधि के अधीन उसी रूप में है जिस रूप में कि कोई दूसरा व्यक्ति है और सरकार भी इसका अपवाद नहीं है। जहां तक वचन-विबंध के सिद्धांत का सम्बन्ध है सरकार के प्रभुता सम्पन्न या सरकारी कृत्यों के प्रयोग और सरकार के व्यापार या सरकार सम्बन्धी क्रियाकलापों के बीच कोई अन्तर नहीं किया जा सकता।

(ग) हम वचन-विबंध का सिद्धान्त लागू किए जाने के लिए इस बात को आवश्यक नहीं समझते हैं कि उस वचनगृहीता को, जो वचन पर विश्वास करके कार्य करता है, नुकसान होना ही चाहिए।

जहां तक प्रथम प्रतिपादता का सम्बन्ध है, उपर्युक्त मामले में न्यायमूर्ति भगवती ने और न्यायमूर्ति शाह ने अपने द्वारा विनिश्चित दो मामलों में वचन-विबंध को वाद-हेतुक के रूप में प्रयोग किए जाने की अनुमति दी थी। न्यायमूर्ति भगवती ने न्यायमूर्ति शाह द्वारा किए गए विनिश्चय का अधिक अवलम्बन किया था। न्यायमूर्ति भगवती ने अपना यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि वचन-विबंध वाद-हेतुक का आधार हो सकता है, कोर्ट आफ अपील[1] के एक निर्णय का अवलम्बन किया था। न्यायमूर्ति भगवती ने इस बात को ध्यान में रखा कि स्पेन्सर बावर और टर्नर[2] ने उस विनिश्चय की व्याख्या इस आधार पर की है कि उस विनिश्चय में साम्पत्तिक विबंध को लागू किया गया है। किन्तु न्यायमूर्ति भगवती ने लार्ड स्काटमैन के इस विचार का अवलंबन किया है कि "वचन-विबंध और साम्पत्तिक विबंध के बीच जो भिन्नता है वह विधि के अध्यापकों या विधि स्पष्ट करने वाले व्यक्तियों के लिए अवश्य ही मूल्यवान् हो सकती है किन्तु मैं ऐसा समझता हूं कि इस विशिष्ट मामले में उठाई गई विशिष्ट समस्या को हल करने के लिए विधि की विभिन्न कोटियों में रख देने से कुछ भी सहायता नहीं मिलेगी और यह कहा कि यह विनिश्चय साम्पत्तिक विबंध के किसी सुभिन्न लक्षण पर आधारित नहीं है बल्कि इस उपधारणा पर अग्रसारित है कि उनके समक्ष जो समस्या थी उसका जहां तक सम्बन्ध है उसके लिए वचन-विबंध और साम्पत्तिक

1. कैब बनाम अरुण डिस्ट्रिक्ट काउन्सिल (1975), 3, इलाहाबाद, इ० आर० 865।
2. ट्रेटाइज आन दि ला रिलेटिंग टू इस्टापल बाई रिप्रेजेन्टेशन (व्यपदेशन द्वारा विबंध से सम्बन्धित विधि की पुस्तक)।

विबंध के बीच कोई भिन्नता नहीं थी। (जोर देने के लिए रेखांकित) और यही यथोचित बात है जिस पर ध्यान दिया जाना है। यदि यह वचन-विबंध का स्पष्ट मामला होता और साम्पत्तिक विबंध का मामला नहीं होता तो क्या विधि के विद्वान लार्डस ने वाद-हेतुक के रूप में विबंध के आधार पर राहत प्रदान किया होता ? लार्ड डेनिंग ने वास्तव में निम्नलिखित कथन किया था[1] और लार्ड सोमैन ने इससे सहमति प्रकट की थी :—

"कई प्रकार के विबंध होते हैं। कुछ विबंधों से वाद-हेतुक उत्पन्न नहीं होते .....। जिस प्रकार के विबंध को "साम्पत्तिक विबंध कहा जाता है उससे वाद-हेतुक उत्पन्न होता है।" किन्तु लार्ड डेनिंग के विचार के पक्ष में और भी बहुत कुछ तब कहा जा सकता है जब न्याय-मूर्ति भगवती ने यह प्रश्न उठाया कि :—

"किन्तु कोई व्यक्ति यह प्रश्न कर सकता है कि कार्रवाई करके विबंध को लागू करने के मामले में वचन-विबंध और साम्पत्तिक विबंध के बीच भिन्नता को किस सिद्धान्त के आधार पर कायम रखा जा सकता है ? यदि साम्पत्तिक विबंध से वाद-हेतुक उत्पन्न हो सकता है तो वचन-विबंध से वाद-हेतुक क्यों नहीं उत्पन्न होना चाहिए ?"

भारत के विधि आयोग ने[2] निम्नलिखित रूप में सिफारिश की थी :—

"कभी-कभी घोर अन्याय तब कर दिया जाता है जब कोई ऐसा वचन दिया जाता है जिसके बारे में वचनदाता यह जानता है कि उस वचन के अनुसार कार्य किया जाएगा और जिसके आधार पर वास्तव में कार्य किया जाता है और तब यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि ऐसा वचन प्रतिफल का अभाव होने के आधार पर लागू नहीं किया जा सकता .....हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 25 में एक अपवाद को जोड़ना चाहिए।"

जिस अपवाद को जोड़ने की सिफारिश की गई थी वह निम्नलिखित रूप में है :—

"धारा 25(4)—अभिव्यक्त या विवक्षित वचन ऐसा वचन है जिसके बारे में वचनदाता यह जानता था या उसे यह उचित रूप में जानना चाहिए था कि वचनगृहीता उस वचन का अवलम्बन तब करेगा जब कि वचन-गृहीता ने उस वचन का विश्वास करके अपनी स्थिति इस तरह से बदल दी है कि उससे उसका नुकसान होता है।"

इस सिफारिश का यह प्रभाव पड़ता है कि वचन-विबंध को वाद-हेतुक मान लेने की इजाजत दे दी जाएगी, भले ही यह स्पष्ट नहीं होता है कि इसके परिणाम का पूर्वानुमान किया गया था या नहीं। अभी तक इस सिफारिश को स्वीकार नहीं किया गया है।

विद्वान न्यायाधीश द्वारा अधिकथित दूसरी प्रतिपादना का जहां तक सम्बन्ध है, हम यह महसूस करते हैं कि न्यायाधीश महोदय विषय से बहुत आगे बढ़ गए हैं और इसके लिए निम्नलिखित कारण हैं :—

(i) न्यायमूर्ति भगवती ने जिस रचयिता[3] का अवलम्बन किया है उसने स्वयं निम्न-लिखित कथन किया है :—

"कोई भी व्यक्ति यह आसानी से देख सकता है कि न्यायालयों और अन्य न्यायिक अधि-करणों को न्यायिक कृत्यों का पालन करने में क्यों नहीं विबंधित किया जाना चाहिए और कोई भी व्यक्ति यह तुरन्त देख सकता है कि सरकार की महत्वपूर्ण नीतियों को और

1. कैव बनाम अरुण डिस्ट्रिक्ट काउन्सिल (1975) इलाहाबाद ई० आर० 865।
2. तेरहवीं रिपोर्ट पृष्ठ 7 और पृष्ठ 77 (1958)।
3. के० सी० डेविस : एडमिनिस्ट्रेटिव ला टेक्स्ट (तृतीय संस्करण, 1972) पृष्ठ 343 और 357।

मुख्य नीति बनाने वाले अधिकारियों को क्यों नहीं कांग्रेस के नियंत्रण में रखना चाहिए तथा ऐसी नीतियों को क्यों नहीं न्यायिक रूप से लागू किए गए विबंध द्वारा प्रभावशाली रूप में परिवर्तित करने दिया जाना चाहिए। किन्तु हम इस बात के लिए कोई कारण तुरन्त नहीं देख पा रहे हैं कि सरकार को अपने कारोबार और सम्पत्ति सम्बन्धी व्यवहारों में क्यों नहीं औचित्य के उन्हीं नियमों के अधीन रहने दिया जाना चाहिए जिन नियमों को न्यायालय ऐसे व्यवहार करने वाले अन्य व्यक्तियों पर लागू करते हैं।"

उपर्युक्त उद्धरण में रचयिता केवल कारोबार में समान बर्ताव तथा सम्पत्ति सम्बन्धी समान व्यवहार किए जाने के लिए तर्क दे रहा था और सरकारी कृत्यों का पालन किए जाने के सम्बन्ध में तर्क नहीं दे रहा था। यह बात उसके निम्नलिखित कथन से स्पष्ट हो जाती है:—

"इस विचारधारा की ओर प्रवृत्ति बढती जा रही है कि विबंध लागू करने के प्रयोजनों के लिए सरकारी यूनिटों के साथ उनकी साम्पत्तिक हैसियत के बारे में उसी तरह का बर्ताव किया जा सकता है जिस तरह का बर्ताव किसी अन्य पक्षकार के साथ किया जाता है और जब न्याय की आवश्यकताओं का तालमेल कारगर शासन की आवश्यकताओं के साथ करना अपेक्षित हो तब सरकारी हैसियत के बारे में भी निबंध लागू किया जा सकता है।"

(ii) यह सच है कि गणतंत्र भी विधि द्वारा शासित होता है किन्तु लोकतंत्रीय या गणतंत्रीय संविधान को उसका परिरक्षण करने वाले साधनों से वंचित नहीं किया जा सकता और ऐसे साधन उसके राजस्व हैं। सरकार को यह अवधारित करना है कि वह लाखों भूखे लोगों और थोड़े से सम्पन्न लोगों के बीच किन लोगों के लिए प्राथमिकता दे। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू के बारे में किसी एक व्यक्ति और सरकार के बीच कोई भी समानता है ही नहीं, जैसा कि श्री सीरवाई ने इस बात को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है[1]:—

("न्यायमूर्ति शाह ने) नवजात लोकतंत्र के आचरण के मानदण्डों के प्रति जो उल्लेख किया है उसमें इस तथ्य को नजरअन्दाज कर दिया गया है कि लोक प्राधिकारियों पर लोक हित के परिरक्षण का भार रहता है जब कि प्राइवेट पक्षकारों पर यह भार नहीं रहता और इस विस्तार की दृष्टि से लोकहित के लिए प्राइवेट व्यक्तियों और लोक प्राधिकारियों के लिए भिन्न-भिन्न मानदण्डों को लागू किया जाना अपेक्षित है।

(iii) जब सरकार अपनी नीति बदल देती है तब न्यायालयों के लिए यह उचित नहीं है कि वे बेईमानी या अनैतिकता की उपधारणा करें और सरकार पर न्यायालयों का यह समाधान करने का भार डाल दें कि सरकार ने कार्यपालिक आवश्यकता के कारण मजबूर होकर उचित ढंग से कार्य किया है। यह भार उस पक्षकार पर होना चाहिए जो कपट या स्पष्ट अन्याय दर्शित करके सरकार के विरुद्ध विबंध को लागू करने की मांग करता है। सरकार किसी विधिक प्रतिपादना का अधिकथन करने में ईमानदारी से कार्य करती है और बाद में अपना दृष्टिकोण बदल देती है। यदि यह तर्क दिया जाता है कि न्यायालय की कोई भिन्न न्यायपीठ विधि को साधारणतया बदल देती है तो यह भी सच है कि सरकार के बदल जाने के कारण सरकारी नीति अकसर बदल जाती है। प्रस्तुत मामले में कर की छूट देने की आरम्भिक नीति उस समय थी जब राज्य राष्ट्रपति के शासन के अधीन था और निर्वाचित सरकार ने इस रियायत को वापस ले लिया। वैसे भी यदि अनुभव से यह दर्शित होता है कि लोकहित में ऐसी नीति का बदल दिया

1. कन्स्टीट्यूशनल ला आफ इंडिया, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 608।

जाना आवश्यक है तो वही सरकार (अर्थात् राष्ट्रपति के शासनकाल की सरकार) अपनी नीति बदल सकती थी और उसे अवश्य बदल देना चाहिए था और इस प्रश्न का विनिश्चय कि क्या लोकहित में नीति बदलना अपेक्षित है, केवल सरकार कर सकती है, न कि न्यायालय । लोकतांत्रिक प्रणाली में उत्तरवर्ती सरकारों द्वारा ही नहीं बल्कि विद्यमान उसी सरकार द्वारा भी नीति बदलना अपेक्षित होता है । यदि सरकार उस समय अपनी नीति नहीं बदल सकती जब सरकार ही बदल जाती है तो सरकार ऐसा कब कर सकती है ? सरकार के विरुद्ध विबंध के न्यायिक प्रवर्तन की मांग का अर्थ इस बात के अलावा और कुछ भी नहीं होगा कि सरकार के किसी दूसरे अंग के क्रियाकलापों के वैध क्षेत्र में अतिचार (ट्रेस-पास) किया जाए और ऐसा करना लोकतांत्रिक प्रणाली में हस्तक्षेप करने के बराबर होगा ।

(iv) न्यायमूर्ति भगवती ने विधानमण्डल को इस सिद्धान्त के कार्य-क्षेत्र से अलग रखा है अर्थात् यह सिद्धान्त विधानमण्डल पर लागू नहीं किया जा सकता । इसका कारण केवल यह हो सकता है कि ऐसी अखण्डनीय उपधारणा विद्यमान है कि विधानमण्डल लोकहित के लिए कार्य करता है क्योंकि वह जनता की आवश्यकताओं को जानता है । क्या कार्यपालिका के बारे में भी ऐसी ही उपधारणा लागू नहीं होती है ? इसके बारे में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि यदि सरकार के विरुद्ध इस विबंध के सिद्धान्त को लागू करने की मांग करने वाला व्यक्ति कपट या स्पष्ट अन्याय को सिद्ध कर देता है तो यह ऐसी खण्डनीय उपधारणा करने का मामला हो सकता है अर्थात् ऐसी उपधारणा की जा सकती है कि कार्यपालिका ने लोकहित के लिए कार्य किया था लेकिन इस उपधारणा का खंडन किया जा सकता है ।

(v) **ग्वालियर रेयन के मामले** में न्यायालय ने विधानमण्डल को इस सिद्धान्त से छूट दे दी है और न्यायमूर्ति भगवती ने इसे स्वीकार कर लिया है । **एन० रामनाथ** के मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जिस प्राधिकारी का कर्तव्य जनता के प्रति है उसके विरुद्ध विबंध लागू करने की दलील नहीं पेश की जा सकती । **रामकुमार के मामले** में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सरकार के विरुद्ध विबंध लागू करने का प्रश्न उस दशा में नहीं उठ सकता जब सरकार अपनी विधायी, कार्यपालिक और प्रभुता सम्पन्न कृत्यों का पालन कर रही हो । ऐसा सर्वसम्मत दृष्टिकोण होने की दशा में, विशेषकर जब पांच न्यायाधीशों की बृहत्तर न्यायपीठों का ऐसा दृष्टिकोण है, सौजन्य के आधार पर यह अपेक्षा की जाती है कि दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ को **एंग्लो-अफगान** के मामले और **सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग** कम्पनी के मामले के निर्णयों का अनुसरण नहीं करना चाहिए था । ये तीन न्यायाधीशों के निर्णय थे और पहले मामले में न्यायमूर्ति शाह द्वारा वचन-विबंध का उल्लेख इतरोक्ति के रूप में था । न्यायमूर्ति भगवती ने रामनाथ के **मामले** से सुभिन्नता यह कह कर की थी कि अर्जीदार इस बात को जानता था कि पद अस्थायी था । किन्तु क्या सरकार की सभी नीतियां बदली नहीं जा सकतीं ? न्यायमूर्ति भगवती **रामनाथ** के मामले में कथन की गई इस बात से भी सहमत थे कि "जब सरकार भिन्न रूप से कार्य करके जनता के प्रति कर्तव्य करती है तब सरकार को ऐसा करने से रोकने के लिए वचन-विबंध को लागू की जाने की मांग नहीं की जा सकती", किन्तु "जनता के प्रति कर्तव्य" का निर्वचन "विधि द्वारा आदिष्ट आचरण करने के" अर्थ में किया गया है । किसी विधि ने सरकार पर यह कर्तव्य अधिरोपित नहीं किया था कि वह रामनाथ का पद समाप्त कर दे और इससे भी बड़ी बात तो यह है कि सरकार जनता के प्रति कर्तव्य करने के लिए सदैव उत्तरदायी है, न कि केवल तब जब कि "विधि द्वारा आदिष्ट किया गया हो" । **रामकुमार** के मामले

में **एंग्लो-अफगान** और सेन्चुरी स्पिनिंग तथा हर्वर्ट माॅरिसन के मामलों का उल्लेख क्यों नहीं किया गया इसके लिए कई कारण हैं। पहले मामले में तो वचन-विबंध का उल्लेख इतरोक्ति के रूप में था। दूसरे मामले में इसका उल्लेख गलत था क्योंकि वह मामला विधायी शक्ति के बारे में था और तीसरा मामला प्राइवेट पक्षकारों के बीच था। न्यायमूर्ति भगवती ने मल्होत्रा के मामले का अवलम्बन यह कथन करने के लिए किया है कि मल्होत्रा के मामले के विनिश्चय से यह दर्शित होता है कि सरकार के विरुद्ध वचन-विबंध लागू किया जा सकता है। किन्तु मल्होत्रा के मामले में निम्नलिखित कथन भी किया गया था :—

"एंग्लो-अफगान और सेन्चुरी स्पिनिंग के मामलों के निर्णयों के समय से लेकर अब तक वचन-विबंध के सिद्धान्त को राज्य के विरुद्ध लागू किए जाने की विचारधारा में कुछ बुनियादी परिवर्तन हुए हैं।"

जैसा कि पहले कहा गया है कि **एंग्लो-अफगान** के मामले में न्यायमूर्ति शाह ने वचन-विबंध का जो उल्लेख किया है वह इतरोक्ति के रूप में है और **सेन्चुरी स्पिनिंग** के मामले में उसी न्यायाधीश द्वारा वचन-विबंध के सिद्धान्त का अवलम्बन करना तो स्पष्ट रूप से गलत था और न्यायमूर्ति भगवती के विचार में भी यह गलत था क्योंकि नगरपालिका द्वारा चुंगी-शुल्क अधिरोपित करने का विनिश्चय करना विधायी शक्ति का प्रयोग किया जाना है।

(vi) अन्तिम बात यह है कि इस प्रतिपादना से यूनाइटेड किंगडम और अमरीका के विधिज्ञों को आश्चर्य होगा क्योंकि इन देशों में सरकार द्वारा अपनी नीति बदल दिए जाने के कारण कभी कोई विवाद उत्पन्न नहीं हुआ।

1972 में इंगलैंड के एक दिलचस्प मामले में[1] सिविल एविएशन अथारिटी (नागरिक उड्डयन प्राधिकरण) ने वादियों को कम व्यय पर "स्काई ट्रेन" नाम की विमान-यात्री सेवा 1973 से दस वर्षों के लिए चलाने के लिए विमान-यातायात-लाइसेन्स प्रदान किया। वादियों ने परिचालन-व्यय के रूप में बहुत धनराशि खर्च की लेकिन 1975 में सरकार बदल जाने के कारण नीति भी बदल गई और 1975 में यह लाइसेन्स रद्द कर दिया गया। रद्द किए जाने को दी गई चुनौती इस आधार पर सफल हो गई कि नई नीति सेक्रेटरी आफ स्टेट की शक्तियों के अधिकारातीत थी किन्तु विबंध के प्रश्न पर निम्नलिखित विचार प्रकट किए गए :—

"लार्ड डेनिंग—इसमें अन्तर्निहित सिद्धान्त यह है कि क्राउन को अपनी शक्तियों का, चाहे ऐसी शक्तियां किसी कानून में या कामन ला द्वारा दी गई हों, प्रयोग करने से उस समय विबंधित नहीं किया जा सकता जब क्राउन लोक कल्याण के लिए कार्य करने के अपने कर्तव्य को पूरा करने में इन शक्तियों का समुचित प्रयोग करके वैसा कार्य कर रहा है, भले ही ऐसे कार्य से प्राइवेट व्यक्तियों को कुछ अन्याय या अनौचित्य होता हो ———। किन्तु जब क्राउन अपनी शक्तियों का प्रयोग समुचित रूप से नहीं कर रहा है बल्कि उसका दुरुपयोग कर रहा है तब उसको विबंधित किया जा सकता है और यदि क्राउन इन शक्तियों का प्रयोग ऐसी परिस्थितियों में करता है जिससे किसी व्यक्ति को अन्याय या अनौचित्य होता है और इसके एवज में जनता को कोई फायदा नहीं होता है तो क्राउन इन शक्तियों का दुरुपयोग करता है।"

वर्तमान मामले में यदि सेक्रेटरी आफ स्टेट को त्यागपत्र वापस लेने का विशेषाधिकार प्राप्त है और उसने इस विशेषाधिकार का प्रयोग समुचित रूप से किया है तो विबंध लागू किए जाने के लिए कोई मामला नहीं चलाया जा सकता। उसने लोक कल्याण के लिए विशेषाधिकार का प्रयोग किया और उसे ऐसा करने का हक प्राप्त था भले ही इससे कुछ व्यक्तियों को अन्याय हुआ हो।

---

1. लेकर एयरवेज बनाम डिपार्टमेन्ट आफ ट्रेड (1977) 2 आल इ० आर० 182।

लार्ड रासकिल ने यह बात बतायी कि जब कोई पार्टी सत्ता ग्रहण करती है तो वह नीति बदलने की बात को निर्वाचन का एक मुद्दा बनाती है। लार्ड रासकिल ने निम्नलिखित विचार भी प्रकट किया :—

"विबंध के सिद्धान्त का प्रयोग सरकारी नीति निर्धारित किए जाने से रोकने के लिए नहीं किया जा सकता या इसके साथ यह भी कहा जा सकता है कि इस सिद्धान्त का प्रयोग साधारण निर्वाचन के संवैधानिक परिणाम को रोकने के लिए नहीं किया जा सकता ।

पदासीन सेक्रेटरी आफ स्टेट ने 1972 और 1974 के बीच चाहे जो भी व्यपदेशन वादियों से किए हों उसने वे व्यपदेशन अपने लोक-कर्तव्य के अनुसरण में और सद्भावनापूर्वक किए थे । यदि 1976 में उसके उत्तराधिकारी की यह राय थी कि उन व्यपदेशनों को भंग करना लोकहित में अपेक्षित था तो वह उनको भंग करने के कर्तव्य से बाध्य था। यह दुर्भाग्य की बात थी कि नीति बदलने के परिणामस्वरूप लेकर एयरवेज को हानि उठानी पड़ी। वे सरकारी नीति के बदल दिए जाने के शिकार हुए हैं। ऐसा अवसर होता है। विबंध का प्रयोग सरकारी नीति निर्धारित किए जाने से रोकने के लिए नहीं किया जा सकता ।"

अमरीका में शैक्षणिक विचार-विमर्श दो मामलों पर केन्द्रित रहा है।[1] इन दोनों मामलों में से किसी भी मामले का सरोकार सरकारी नीति के बदलने से नहीं था। पहले मामले में अमरीका के सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि कारोबार से सम्बन्धित मामलों में भी सरकार और प्राइवेट व्यक्तियों के बीच भिन्नता है ।

इन दोनों देशों में, जो हमारी विधि के स्रोत बने हुए हैं, विवाद इस बात के बारे में है कि सरकार अपने पदाधिकारियों के व्यपदेशनों से किस हद तक बाध्य है ?

हम न्यायमूर्ति भगवती की तीसरी प्रतिपादना के सम्बन्ध में यह महसूस करते हैं कि इसमें भी विद्वान न्यायाधीश यह कथन करने में कुछ आगे बढ़ गए हैं कि नुकसान साबित करने की आवश्यकता नहीं है ।

अन्ततः यह सिद्धान्त तो साम्या का ही एक सिद्धान्त है और जब तक किसी की क्षति नहीं होती है तब तक साम्या का प्रश्न कभी उठ ही नहीं सकता । अर्थात् जब तक किसी ऐसे व्यक्ति की, जिससे व्यपदेशन किया जाता है, साम्या का नियम लागू न किए जाने की दशा में अन्यायपूर्ण क्षति नहीं होती है तब तक बचन-विबंध लागू किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

जिस व्यक्ति से व्यपदेशन किया गया है उसके नुकसान के प्रश्न के बारे में दो दृष्टि-कोण हैं । एक दृष्टिकोण यह है कि जिस व्यक्ति से व्यपदेशन किया गया है क्या उस व्यक्ति द्वारा उस व्यपदेशन पर कार्य करने से ही उसने नुकसान उठाया है ? दूसरा दृष्टिकोण यह है कि जिस व्यक्ति ने व्यपदेशन पर कार्य किया है उसके प्रति क्या उस दशा में अन्याय होता जब कि व्यपदेशन करने वाले व्यक्ति को अपना कथन भंग करने की इजाजत दी जाती ? जस्टिस डिक्सन ने इन दो दृष्टिकोणों को निम्नलिखित रूप में बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है :—

"मूल रूप में विबंध जिस सिद्धान्त पर आधारित है वह यह है कि विधि द्वारा किसी पक्षकार को इस बात की इजाजत नहीं मिलनी चाहिए वह किसी ऐसे तथ्य की उपधारणा किए जाने से अन्यायपूर्ण विचलन करे जिसे उसने पारस्परिक विधिक सम्बन्धों के प्रयोजन के लिए दूसरे पक्षकार द्वारा अपनाए जाने या स्वीकार किए जाने के लिए प्रेरित किया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह बहुत ही साधारण कथन है । किन्तु यह विबंध को लागू होने वाले नियमों का आधार है । ये नियम उन आधारों को ठीक-ठीक निश्चित करते हैं जिनमें विधि किसी पक्षकार को किसी दूसरे पक्षकार के विरुद्ध अपने अधिकारों की दृढ़तापूर्वक मांग करने के

1. फेडरल कारपोरेशन इन्श्योरेन्स कारपोरेशन बनाम मेरिल 332 यू० एस० 380 और यू० एस० (1951) 341 यू० एस० 41 ।

लिए उपधारणा से विचलन करने का हकदार नहीं बनाती है । एक शर्त तो सदैव अनिवार्य प्रतीत होती है । वह यह है कि जिस पक्षकार से व्यपदेशन किया गया है उसने उपधारणा की गई स्थिति के आधार पर यह अनुमान लगाकर कार्य अवश्य किया है या नहीं किया है कि यदि विरोधी पक्षकार तत्पश्चात् उसके विरुद्ध ऐसे अधिकारों की मांग करने की इजाजत दे दी गई जो उसके द्वारा की गई अपधारणा के विपरीत है । इस आवश्यक शर्त का कथन करने में, विशेषकर उस दशा में जब कि व्यपदेशन से विबंध उत्पन्न होती है, यह अक्सर कहा जाता है कि विबंध की मांग करने वाला पक्षकार ऐसा कार्य करने के लिए अवश्य प्रेरित हुआ होगा जिससे उसका नुकसान हो । यद्यपि यह कथन पर्याप्त रूप से सही है और इससे कोई भ्रम नहीं होता है तथापि इससे विबंध के सिद्धान्त का मूल प्रयोजन स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं होता है । वह प्रयोजन यह है कि विबंध की मांग करने वाले पक्षकार का नुकसान बचाया या रोका जाए और इसके लिए विरोधी पक्षकार उस उपधारणा के अनुसार कार्य करने के लिए मजबूर किया जाए जिस उपधारणा के आधार पर पूर्वोक्त पक्षकार ने कार्य किया था या कार्य नहीं किया था । इसका अर्थ यह है कि विधि उस वास्तविक नुकसान या हानि को बचाने के लिए संरक्षण देना चाहती है जो उपधारणा का परित्याग करने के कारण पहले वाली स्थिति के बदल जाने से होती । जब तक उपधारणा का अनुसरण किया जाता है तब तक वह पक्षकार, जिसने उस उपधारणा के विश्वास पर अपनी स्थिति बदल दी है, शिकायत नहीं कर सकता । उसकी शिकायत यह है कि जब दूसरा पक्षकार तत्पश्चात् उसके विरुद्ध अधिकार की मांग इस आधार पर करता है कि दूसरे पक्षकार ने अपनी स्थिति बदल ली है और तब यदि उसे ऐसा करने की इजाजत दी जाती है तो उसकी अपनी मूल स्थिति बदल जाने से उसका नुकसान होगा । उसका कार्य करना या कार्य न करना अवश्य ही ऐसा होना चाहिए कि यदि यह दर्शित कर दिया जाता है कि जिस उपधारणा के आधार पर वह अग्रसर हुआ था वह उपधारणा गलत है और क्योंकि असंगत स्थिति को उसके तथा विरोधी पक्षकार के अधिकारों और कर्तव्यों का आधार स्वीकार कर लिया गया था इसलिए इसका परिणाम यह होगा कि उसका आरंभिक कार्य का किया जाना या उसका न किया जाना उसके हित के प्रतिकूल हो जाएगा ।[1]

स्पेन्सर बावर और टर्नर[2] ने इन दोनों दृष्टिकोणों की समीक्षा की है और निम्नलिखित कथन किया है :—

"उच्च अधिकृत विद्वानों की इस बात पर साधारण सहमति होते हुए भी कि वचन पर विश्वास करने में वचनगृहीता की स्थिति अवश्य बदल जानी चाहिए यह गंभीरतापूर्वक तर्क दिया गया है कि यह आवश्यक नहीं है कि स्थिति के ऐसे बदल जाने से "नुकसान" होना ही चाहिए । लार्ड डेनिंग इस प्रतिपादना के प्रमुख पक्षधर (हिमायती) हैं————(जहां विबंध के मामलों में "नुकसान" शब्द का प्रयोग किया जाता है वहां यदि इस शब्द के अर्थ की ठीक-ठीक जांच उस विचार-विमर्श की दृष्टि से की जाए जिसे जस्टिस डिक्सन ने लिखा है तो यह स्पष्ट है कि नुकसान का अर्थ वचनगृहीता के प्रति वह अन्याय है जो उसे तब होगा जब कि वचनदाता को अपना वचन भंग करने की इजाजत दी गई होती । इस परिभाषा से अनेक वास्तविक मामलों में दोनों प्रकार की विचारधाराओं के बीच की कठिनाइयां दूर हो जाएंगी—— किन्तु इन सब बातों के होते हुए भी ऐसे बहुत से मामलों के बाकी रह जाने की संभावना है जिनमें इस बात को कायम रखना असंभव होगा कि इसके परिणामस्वरूप कोई नुकसान हुआ था और फिर भी यह कहा जा सकता है कि वचनगृहीता ने वचन के आधार पर "कार्य किया था" । सम्भवतः ऐसे मामलों की कल्पना करना कठिन है जो वचन-विबंध के मामले होने की अन्य सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हों । ————————किन्तु यदि जब कभी सर्वोच्च प्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किए जाने के लिए कोई ऐसा मामला उठता है जिसमें यह तथ्य पाया जाता है कि वचनगृहीता ने वचन के आधार पर "कार्य करते हुए" ऐसा कुछ नहीं किया है जिससे उसका वैसा नुकसान हुआ हो जैसा कि जस्टिस डिक्सन

1. ग्रण्ड बनाम ग्रेट बोल्डर प्राइवेट गोल्ड माइन्स लिमिटेड (1938) 59 सी० एल० आर० 4 ।
2. दि ला रिलेटिंग टू इस्टापल बाई रिप्रेजेन्टेशन (तृतीय संस्करण पृ० 391–394) ।

ने "नुकसान" शब्द को विस्तृत अर्थ प्रदान किया है तो यह विनिश्चय करना आवश्यक हो जाएगा कि क्या "नुकसान" हुए बिना "कार्य करना" पर्याप्त है। यहां यह निवेदन कर दिया जा रहा है कि वचन-विबंध के लिए जैसा कि परम्परागत विबंध में होता है, "नुकसान का होना उसी अर्थ में आवश्यक होगा जो अर्थ जस्टिस डिक्सन ने इस शब्द को प्रदान किया है क्योंकि इससे आगे बढ़ने में बिना प्रतिफल के मामूली वचन को भी लागू करने का खतरा मोल लेना है।"

हम विद्वान रचयिताओं के विचारों को स्वीकार करना चाहते हैं और "नुकसान" को जिस रूप में ऊपर स्पष्ट किया गया है उस रूप में उसे वचन-विबंध के सिद्धांत के लिए एक आवश्यक तत्व मानना चाहते हैं। वास्तव में एम० पी० शुगर मिल्स का मामला एक गलत मामला है जिसमें न्यायमूर्ति भगवती ने विपरीत विचार प्रकट किया है। इस मामले में सरकार ही बदल गई थी और मुख्य सचिव द्वारा किया गया व्यपदेशन उसके प्राधिकार के बाहर था क्योंकि विक्रय कर से छूट अधिनियम की केवल धारा 44 के अधीन दी जा सकती थी और अर्जीदार की कोई हानि नहीं हुई थी और उसे कोई हानि होती भी नहीं। जब विक्रय-कर अधिरोपित किया जाता तब वह उपभोक्ता पर लग जाता और अर्जीदार की कोई आर्थिक हानि नहीं होती।

जीत राम बनाम स्टेट आफ हरियाणा।

2.18 सम्बद्ध नगरपालिक समिति ने एक मण्डी स्थापित करने के बारे में यह विनिश्चय किया कि मण्डी में विक्रय किए जाने वाले प्लाटों के क्रेताओं से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वे मण्डी के अन्दर आयात किए गए माल पर चुंगी-शुल्क का संदाय करें। ऐसा 1918 में विनिश्चित हुआ था और तब से 1965 तक यही स्थिति बनी रही। यद्यपि इसके दौरान नगरपालिका ने अपना विनिश्चय बदला लेकिन सरकार ने प्लाटों के क्रेताओं को चुंगी-शुल्क से छूट देने की जो कार्रवाई शुरू में की थी उसका सरकार ने अनुमोदन कर दिया। 1965 में नगरपालिक समिति के अनुरोध पर सरकार ने पूर्ववर्ती कार्रवाई के अपने अनुमोदन को वापस ले लिया और नगरपालिक समिति ने चुंगी-शुल्क उद्गृहीत करना शुरू कर दिया। नगरपालिका की इस कार्रवाई को चुनौती दी गई और असफल रही। उच्चतम न्यायालय ने[1] अपील खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि :—

"जहां तक नगरपालिक समिति की उस सिफारिश का सम्बन्ध है जो उसने चुंगी-शुल्क उद्गृहीत करने के लिए सरकार से की थी वह सिफारिश यद्यपि उस व्यपदेशन के विपरीत है जो नगरपालिक समिति ने मण्डी में प्लाटों के क्रेताओं से किया था तथापि नगरपालिका अपने द्वारा किए गए व्यपदेशन से विबंधित नहीं है क्योंकि ऐसा व्यपदेशन नगरपालिका के प्राधिकार-क्षेत्र के बाहर था। कर का उद्ग्रहण (लेवी) लोक प्रयोजन के लिए है अर्थात् नगरपालिका के राजस्व में वृद्धि करने के लिए है इसलिए रामकुमार के मामले (ए० आई० आर० 1976 सुप्रीम कोर्ट 2237) में जैसा अधिकथित है उसके अनुसार इस मामले में भी विबंध लागू करने की दलील पेश नहीं की जा सकती। नगरपालिका के संकल्प के अनुसरण में चुंगी उद्गृहीत करने का निदेश देने वाले सरकारी आदेश को भी चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि यह उसके कानूनी कर्तव्य के अधिकार का प्रयोग करने के लिए है।"

विद्वान न्यायाधीशों ने निर्णय में वचन-विबंध के संबंध में निम्नलिखित प्रतिपादनाओं का अधिकथन किया :—

(1) राज्य के विधायी कृत्यों के अधिकार के प्रयोग के विरुद्ध वचन-विबंध की दलील पेश नहीं की जा सकती।

(2) सरकार को विधि के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने से रोकने के लिए वचन-विबंध का सिद्धांत लागू करने की मांग नहीं की जा सकती।

---

1. ए० आई० आर० 1980 सुप्रीम कोर्ट 1285।

(3) जब सरकारी अधिकारी अपने प्राधिकार-क्षेत्र के बाहर कार्य करता है तब बचन-विबंध की दलील पेश नहीं की जा सकती। ऐसी दशा में अधिकारातीत का सिद्धांत लागू होगा और सरकार को अपने अधिकारियों के अप्राधिकृत कार्यों के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

(4) जब अधिकारी अपने प्राधिकार-क्षेत्र के अन्दर किसी स्कीम के अधीन कार्य करता है और करार करता है तथा व्यपदेशन करता है और कोई व्यक्ति ऐसा व्यपदेशन के आधार पर अपने को अहितकर स्थिति में डाल देता है तब न्यायालय को उस अधिकारी से यह अपेक्षा करने का हक है कि वह अधिकारी स्कीम और करार या व्यपदेशन के अनुसार कार्य करे। अधिकारी केवल अपनी इच्छानुसार मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकता और आवश्यकता या शर्तें बदलने के लिए अस्पष्ट तथा अप्रकट आधारों पर अपने वचन की ऐसी उपेक्षा नहीं कर सकता जो उस व्यक्ति के प्रतिकूल हो जिसने उस व्यपदेशन के आधार पर कार्य किया है और अपने को अहितकर स्थिति में डाल दिया है।

यदि लोक प्राधिकारी सरकार की ओर से अपने द्वारा दिए गए वचन की उपेक्षा मनमाने ढंग से या केवल अपनी इच्छा से करता है तो न्यायालय उस प्राधिकारी द्वारा उसके वचन का पालन या यदि इस अधिकारी पर कोई बाध्यता अधिरोपित है तो उस बाध्यता का पालन करा सकता है।

(5) यदि अधिकारी विशेष बातों को, जैसे कि विदेशी मुद्रा की कठिन स्थिति या अन्य ऐसी बातों को जिनका राज्य के हित पर प्रभाव पड़ता है, ध्यान में रखकर करार के निबन्धनों को दूसरे पक्षकार के प्रतिकूल बदल देता है तो उसका ऐसा कार्य करना न्यायोचित होगा।

अध्याय 3

यूनाइटेड किंगडम और अमेरीका में विधि

यूनाइटेड किंगडम

3.1 यूनाइटेड किंगडम में वचन-विबंध के संबंध में जो विधि है उसका संक्षिप्त और स्पष्ट वर्णन पाठ्य-पुस्तकों[1] में निम्नलिखित रूप में है :—

स्नेल : **वचन-विबंध**—जहां किसी संव्यवहार में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को अपने शब्दों या आचरण से ऐसा वचन या आश्वासन देता है जिसका आशय उन दोनों पक्षकारों के बीच विधिक संबंधों को प्रभावित करना है और दूसरा पक्षकार अपना नुकसान उठाते हुए अपनी स्थिति बदल कर उस वचन या आश्वासन के आधार पर कोई कार्य करता है वहां वचन या आश्वासन देने वाले पक्षकार को अपने वचन या आश्वासन से असंगत रूप में कार्य करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

कामन ला में विबंध के संबंध में जैसा उपबंधित है उसी की तरह वचन-विबंध के संबंध में भी प्रतिरक्षा (सफाई देने) के लिए उपबंधित किया जा सकता है किन्तु इससे कोई वाद-हेतुक उत्पन्न नहीं हो सकता।

वचन-विबंध और साम्पत्तिक विबंध के बीच अंतर यह है कि वचन-विबंध का प्रभाव केवल अस्थायी हो सकता है जब कि साम्पत्तिक-विबंध का प्रभाव न केवल स्थायी होता है बल्कि यह निश्चित रूप से वाद-हेतुक का अधिकार प्रदान कर सकता है।

हैनबरी: **वचन-विबंध**—जहां कोई व्यक्ति अपने शब्दों या आचरण से भविष्य में अपने आचरण के संबंध में कोई ऐसा असंदिग्धत व्यपदेशन करता है जिसका आशय यह है कि उस व्यपदेशन का अवलम्बन किया जाए और पक्षकारों के बीच विधिक संबंधों पर प्रभाव पड़े और जिस पक्षकार से व्यपदेशन किया जाता है वह पक्षकार उस व्यपदेशन का अवलम्बन करके अपनी स्थिति बदल देता है वहां व्यपदेशन करने वाला पक्षकार उस दशा में अपने व्यपदेशन से असंगत रूप में कार्य करने में असमर्थ होगा जब कि ऐसा करना उस पक्षकार के हित के प्रतिकूल हो जिससे व्यपदेशन किया गया है।

वचन-विबंध में ऐसी अनेक विशेष बातें होती हैं जो तथ्य संबंधी व्यपदेशन के विबंध से भिन्न होती हैं। पहली बात तो यह कि व्यपदेशन केवल आशय प्रकट करने के लिए हो सकता है और तथ्य के बारे में नहीं हो सकता है। इससे यह प्रश्न उठता है क्या यह **जोर्डन बनाम मनी**[2] के मामले में हाउस आफ लार्ड्स के विनिश्चय से असंगत है? किन्तु अब सिद्धांत भलीभांति स्थापित हो चुका है। दूसरी बात यह है कि जिस पक्षकार से व्यपदेशन किया गया है उस पक्षकार का नुकसान होने की अपेक्षा वचन-विबंध की दशा में कम कठोरता से की जाती है। वित्तीय हानि या अन्य नुकसान होना ही पर्याप्त है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस बात से अधिक दर्शित करना आवश्यक नहीं है कि जिस पक्षकार से व्यपदेशन किया गया था उस पक्षकार ने उस व्यपदेशन के परिणामस्वरूप विशेष ढंग से कार्रवाई करने का निश्चय किया था। तीसरी बात यह है कि विबंध का प्रभाव स्थायी नहीं हो सकता है। यदि व्यपदेशन करने वाला पक्षकार यह सुनिश्चित कर देता है कि उसने जिस पक्षकार से व्यपदेशन किया था उसके हित पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा तो वह साम्या का भार वहन करने से बच

---

1. स्नेल—प्रिन्सिपल्स आफ इक्विटी, छब्बीसवां संस्करण (1966) पृ० 625 से 631 तक। हैनबरी—मार्डन इक्विटी, ग्यारहवां संस्करण (1981) पृ० 735 से 739 तक।
2. (1854) 5 एच० एल० सी० 185।

सकता है। किन्तु व्यपदेशन द्वारा विबंध से सुसंगत रूप में वचन-विबंध से वाद-हेतुक उत्पन्न नहीं होता । यह नकारात्मक संरक्षण प्रदान करने के लिए लागू किया जाता है। यह एक तलवार नहीं बल्कि एक ढाल है।

साम्पत्तिक विबंध—यह सिद्धांत वहां लागू होता है जहां एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को अपना नुकसान उठाकर और प्रथम पक्षकार के अधिकारों का अतिलंघन करके कोई कार्य करने के लिए या किसी दूसरे के कार्यों की उपमति (मौन सम्मति) देने के लिए जानबूझ कर प्रोत्साहित करता है। यह सिद्धांत प्रोत्साहन और उपमति पर आधारित है और साम्या का न्यायालय इस सिद्धांत के अधीन पक्षकारों के अधिकारों का ऐसा समायोजन करेगा जिससे कि दोनों पक्षकारों के बीच पर्याप्त न्याय हो सके।

अमेरीका।

3.2 अमरीका में इस विधि का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया गया है :—

पुनः कथन[1]—ऐसा वचन है जिसके बारे में वचनदाता को यह उचित रूप से आशा करनी चाहिए कि वचनगृहीता कोई निश्चित और सारवान् रूप का कार्य करने या न करने के लिए प्रेरित होगा और जो ऐसा कार्य किए जाने या न किए जाने के लिए उस दशा में आवद्धकर बना देता है जब कि वचन का प्रवर्तन कर दिए जाने पर ही अन्याय से बचा जा सकता है।

अमरीकी विधि-शास्त्र[2]—विबंध को राज्य के संबंध में लागू किए जाने के बारे में काफी विवाद है। यह तो कहा जाता है कि साम्यापूर्ण विबंध उस समय राज्य के विरुद्ध लागू किया जाएगा जब कि ऐसा करना तथ्यों के आधार पर न्यायोचित हो किन्तु यह भी स्पष्ट है कि विबंध के सिद्धांत को राज्य के विरुद्ध आसानी से लागू नहीं किया जाना चाहिए। राज्य साधारणतया विबंध के अधीन उस विस्तार तक नहीं है जिस विस्तार तक कोई व्यक्ति या प्राइवेट निगम (कारपोरेशन) है। अन्यथा राज्य शासन करने में अपनी शक्तियों को दृढ़तापूर्वक लागू करने में असहाय हो सकता है इसलिए साधारण नियम के रूप में विबंध के सिद्धांत को राज्य के विरुद्ध उसकी सरकारी, लोक या प्रभुतासंपन्न हैसियत में लागू नहीं किया जाएगा। किन्तु राज्य पर विबंध को लागू किए जाने में एक अपवाद उस समय उत्पन्न होता है जब कि कपट या स्पष्ट अन्याय को रोकने के लिए विबंध को लागू करना आवश्यक है।

---

1. अमेरिकन ला इन्स्टीट्यूट्स रिस्टेटमेन्ट आफ दि ला आफ कान्ट्रक्टस का अनुच्छेद 90 (अमरीकी विधि संस्थान द्वारा संविदा-विधि के पुनः कथन का अनुच्छेद 90)।
2. खण्ड 28, पृष्ठ 783, पैरा 123.।

अध्याय 4

समस्याएं

समस्याएं ।

4.1 अब हम पूर्वतर विचार विमर्श से उत्पन्न समस्याओं का कथन करने की स्थिति में हैं। ये समस्याएं निम्नलिखित हैं :—

(क) क्या वचन-विबंध को वाद-हेतुक के रूप में प्रयोग करने दिया जाना चाहिए ?

(ख) क्या इस सिद्धांत का प्रयोग सरकार के विरुद्ध किया जा सकता है और यदि ऐसा किया जा सकता है तो कब? और

(ग) क्या वचनगृहीता को यह सिद्धांत लागू करने की मांग करने से पहले नुकसान उठाना चाहिए ?

ये समस्याएं इस कारण[1] उत्पन्न होती हैं कि सभ्य प्रशासन की सभी पद्धतियों में नागरिक सम्बद्ध विभागों और अभिकरणों (एजेन्सियों) से आशा करते हैं कि वे उस प्रक्रिया के अनुरूप कार्य करेंगे जिस प्रक्रिया को उन्होंने अपने लिए बनाया है या उन्होंने जो वचन दिया है उसके अनुरूप कार्य करेंगे। ऐसी प्रक्रिया या वचन का विचलन करने से, भले ही वह कार्य पद्धति के किसी नियम का ही हो, विधिसम्मत आशाओं को निष्फल कर देता है और नागरिक मनमानी कार्रवाईयों के विरुद्ध उपचार के लिए न्यायालय में जाते हैं। तब न्यायालयों को यह विनिश्चय करना पड़ेगा कि क्या प्रश्नास्पद प्रक्रिया या वचन उस निकाय के विरुद्ध लागू किया जा सकता है जिसने उस प्रक्रिया को अपनाया है या वह वचन दिया है। किस हद तक प्राइवेट विधि का यह सिद्धांत कि ऐसे व्यक्तियों को, जिन्होंने व्यपदेशन किया है और अन्य व्यक्तियों ने उस व्यपदेशन के आधार पर अपना नुकसान उठा करके कार्य किया है, उस व्यपदेशन को पूरा करने के लिए बाध्य किया जाए, ऐसे निकायों के विरुद्ध लागू किया जा सकता है। एक दृष्टिकोण यह है कि जिन लोकनिकाय को लोक प्रयोजनों के लिए शक्तियां और कर्तव्य सौंपे गए हैं उनके द्वारा संविदा किए जाने में इन शक्तियों और कर्तव्यों को पूरा करने से वंचित नहीं किया जा सकता या उन्हें ऐसा व्यपदेशन करने से रोका नहीं जा सकता जो उनकी शक्तियों और कर्तव्यों का निर्वहन किए जाने के विपरीत हो।

यदि कोई विभागीय पदाधिकारी कोई ऐसा व्यपदेशन करता है जिसका अवलम्बन कोई प्राइवेट पक्षकार इस प्रकार करता है कि उससे उसकी क्षति होती है तो ऐसा होने पर भी विभाग अपने व्यपदेशन की भंग कर सकता है क्योंकि विभागीय पदाधिकारी के लिए ऐसा करना लोकहित में आवश्यक हो सकता है————————दूसरा दृष्टिकोण यह है कि जब तक न्यायालय के समाधानप्रद रूप में यह दर्शित नहीं कर दिया जाता कि वचन या व्यपदेशन का विचलन करना लोकहित की अभिभावी बातों के कारण न्यायोचित होगा तब तक विभाग को व्यपदेशन पूरा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

विधि आयोग के विचार ।

4.2 हमारे विचार निम्नलिखित रूप में हैं :—

(क) विधि आयोग ने अपनी तेरहवीं रिपोर्ट में जो सिफारिश की है उसे दृष्टि में रखते हुए वचन-विबंध को वाद-हेतुक के रूप में प्रयोग करने दिया जा सकता है।

(ख) सरकार के कामकाज और संपत्ति संबंधी क्रियाकलापों के बारे में इस सिद्धांत का प्रयोग सरकार के विरुद्ध किया जा सकता है। इस क्षेत्र में स्थिति उस स्थिति के समान नहीं है जो दुष्कृति (टार्ट) संबंधी दायित्व के बारे में तब होती है जब

1. (1983) के० ए० टी० 1083, 1089 (गोविन्दन बनाम कोचीन शिपयार्ड) ।

न्यायालयों द्वारा ही इन दोनों स्थितियों के बीच दुर्भाग्यवश सुभिन्नता की जाती है। सरकारी क्रियाकलापों के बारे में सरकार के विरुद्ध वचन-विबंध के सिद्धांत को लागू करने से सरकार और उसके अभिकरण (एजेन्सियां) निष्प्रभावी हो जाएंगे और इसीलिए हम इस क्षेत्र में इस सिद्धांत के विभाजन को मान्यता देते हैं।

(ग) इस पहलू के बारे में हमारा यह विचार है कि जस्टिस डिक्सन ने नुकसान का जो अर्थ ऊपर स्पष्ट किया है उस अर्थ में नुकसान होना चाहिए, अर्थात् जिस व्यक्ति से व्यपदेशन किया गया है या जिसको वचन दिया गया है उसे उस दशा में नुकसान या हानि होने की संभावना हो जब कि व्यपदेशन करने वाले या वचन देने वाले व्यक्ति को अपना व्यपदेशन या वचन भंग करने की इजाजत दी जाती है।

अध्याय 5

प्राप्त आलोचनाएं

5.1 विधि आयोग ने उपर्युक्त पहलुओं के बारे में एक कार्यसंचालन पत्र जारी किया था और निम्नलिखित आलोचनाएं प्राप्त हुई थीं। आयोग उत्तर भेजने के लिए उत्तरदाताओं के प्रति आभारी है।

5.2 उच्च न्यायालयों ने[1] कोई आलोचना नहीं की। तीन राज्य सरकारों[2] के विधि विभागों ने प्रस्तावित संशोधनों के बारे में अपनी सहमति प्रकट की थी। इनकारपोरेटेड ला सोसाइटी आफ कलकत्ता (कलकत्ता की निगमित विधि सोसाइटी)[3] ने यह सुझाव दिया था कि धारा 25क की प्रस्तावित उपधारा (3) के खण्ड (घ) का प्रवर्तन, जब सरकार वचन-दाता है तब, सरकार के किसी प्राधिकृत अधिकारी द्वारा कराया जाना चाहिए। सोसाइटी ने यह भी संकेत किया था कि एक उपधारा (4) भी इस बात के लिए जोड़ दी जा सकती है कि वचन-विबंध का सिद्धांत केवल उन्हीं मामलों में उपलब्ध होगा जिनके लिए उपबंध किया गया है और अन्य मामलों में उपलब्ध नहीं होगा। जब सरकार वचनदाता है तब वचन के बारे में यह समझा जाता है कि वह सरकार की ओर से किसी सक्षम अधिकारी द्वारा दिया गया वचन है। इसलिए विधि आयोग यह सिफारिश नहीं कर रहा है कि ऐसा उपबंध किया जाना चाहिए।

5.3 विधि आयोग ने आलोचनाओं में प्रकट किए गए विचारों पर पूरी तरह से ध्यान दिया है। तदनुसार विधि आयोग अध्याय 6 में बताई गई सिफारिशें कर रहा है।

---

1. विधि आयोग की फाइल सं० 2(2)/84–एल०सी० क्रम सं० 3 (आर)।
2. विधि आयोग की फाइल सं० 2(2)/84–एल०सी० क्रम सं० 7 (आर)।
3. विधि आयोग की फाइल सं० 2(2)/84–एल०सी० क्रम सं० 5 (आर)।

अध्याय 6

सिफारिशें

विधि आयोग की सिफारिशें।

6.1 यह सुझाव दिया जा रहा है कि क्योंकि वचन-विबंध का सिद्धांत साम्या पर आधारित एक फायदाप्रद सिद्धांत है इसलिए इसके प्रवर्तन का अपवर्जन केवल अत्यंत आवश्यक स्थिति में किया जा सकता है अर्थात् इसको लागू न करने की इजाजत तभी दी जा सकती है जब ऐसी इजाजत देना अत्यंत आवश्यक हो। समुचित तरीका तो यह होगा कि सरकार को उसके उस वचन से आबद्ध कर दिया जाए जिस वचन के आधार पर दूसरे पक्षकार (वचन-गृहीता) ने कार्य किया है लेकिन इसके कुछ ऐसे अपवाद होंगे जो बहुत ही कम मामलों में हो सकते हैं। हम "प्रभुतासंपन्न कृत्यों" और "प्रभुता से संपन्न न होने वाले कृत्यों" की कसौटी अपनाए जाने की सिफारिश नहीं कर रहे हैं क्योंकि इस कसौटी को लागू करना आसान नहीं है। हमारी सिफारिश यह है कि भारतीय संविदा अधिनियम में धारा 25 के पश्चात् एक नई धारा अन्तःस्थापित की जा सकती है जैसा कि नीचे सुझाव दिया जा रहा है।

संविदा अधिनियम में अन्तःस्थापित की जाने के लिए सुझाई गई धारा 25क

वचन-विबंध।

6.2 25क(1) जहां—

(क) कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपने शब्दों या आचरण से असन्दिग्ध रूप में कोई ऐसा वचन देता है जिसका आशय विधिक संबंध स्थापित करना है या भविष्य में उत्पन्न होने वाले विधिक सम्बन्धों को प्रभावित करना है; और

(ख) ऐसा वचन देने वाला व्यक्ति यह जानता है या यह आशय रखता है कि जिस व्यक्ति को वचन दिया गया है वह व्यक्ति उस वचन के आधार पर कार्य करेगा; और

(ग) जब दूसरा व्यक्ति ऐसे वचन के आधार पर अपनी स्थिति को बदल कर वास्तव में कार्य करता है तब इस बात के होते हुए भी कि वचन बिना प्रतिफल के है, वचन देने वाले व्यक्ति पर वह वचन बाध्यकर उस दशा में होगा जब कि उन व्यवहारों को ध्यान में रखते हुए, जो पक्षकारों के बीच हुए हैं, वचन देने वाले व्यक्ति को अपने वचन से आबद्ध न करना अन्यायपूर्ण कार्य होगा।

(2) इस धारा के उपबन्ध उस दशा में भी लागू होंगे जब कि पक्षकारों के बीच संबंध पहले से विद्यमान रहे हों या न रहे हों।

(3) इस धारा के उपबन्ध निम्नलिखित दशा में लागू नहीं होंगे :—

(क) जहां पश्चात्वर्ती घटनाओं के होने से यह दर्शित होता है कि वचनदाता को अपने वचन से आबद्ध करना अन्यायपूर्ण होगा; या

(ख) जहां वचनदाता सरकार है और यदि सरकार को अपने वचन से आबद्ध किया जाता है तो लोकहित की हानि होगी; या

(ग) जहां वचनदाता सरकार है और वचन को प्रवर्तित करना सरकार पर विधि द्वारा अधिरोपित बाध्यता या दायित्व से असंगत होगा।

स्पष्टीकरण 1—जहां यह प्रश्न उठता है कि क्या खण्ड (ख) के अधीन लोकहित की हानि होगी वहीं न्यायालय इस बात को ध्यान में रखेगा कि वचनगृहीता को उस दशा में कितनी हानि होने की सम्भावना है जब कि वचन प्रवर्तित नहीं किया जाता है, और लोक-हित की कितनी क्षति उस दशा में होगी जब कि वचन प्रवर्तित किया जाता है और न्यायालय इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर संतुलन बनाए रखने का विनिश्चय करेगा।

स्पष्टीकरण 2—इस धारा में "सरकार" के अन्तर्गत सभी लोक निकाय भी हैं।

(के०के०मैथ्यू)
अध्यक्ष

(जे० पी० चतुर्वेदी)
सदस्य

(डा०एम०बी० राव)
सदस्य

(पी० एम० बख्शी)
अंशकालिक सदस्य

(वेपा० पी० सारथी)
अंशकालिक सदस्य

(ए० के० श्रीनिवासमूर्ति)
सदस्य-सचिव

तारीख 12 दिसम्बर, 1984

GIPCBE—S—4 28 M of LJ & CA/84—18-2-87—250